ISSN-0971-8397

योजना

जनवरी 2010 | विकास को समर्पित मासिक | मूल्य : 10 रुपये

भारत

गणतंत्र के 60 वर्ष

सत्यमेव जयते

रोज़गार समाचार

साप्ताहिक

क्या आप सरकारी/सार्वजनिक क्षेत्र उपक्रम/कर्मचारी चयन आयोग/संघ लोक सेवा आयोग/ रेलवे भर्ती बोर्ड/सशत्र सेनाओं/बैंकों में रोज़गार तलाश रहें हैं?

रोज़गार समाचार आपका श्रेष्ठ मार्गदर्शक है। यह विगत तीस वर्षों से नौकरियों के लिए सबसे अधिक बिकने वाला साप्ताहिक है। आप भी इसके सहभागी बनें।

आपका हमारी वेबसाइट: *employmenteews.gov.in* पर स्वागत है, जो कि

- नवीनतम प्रौद्योगिकी से विकसित है।
- उन्नत किस्म के सर्च इंजिन से युक्त है।
- आपके प्रश्नों का विशेषज्ञों द्वारा शीघ्र समाधान करती है।

रोज़गार समाचार/एम्प्लाएमेंट न्यूज की प्रति के लिए निकटतम वितरक से संपर्क करें।

व्यापार संबंधी पूछताछ के लिए संपर्क करें :

रोज़गारसमाचार, पूर्वीखण्ड4, तल5, रामकृष्णपुरम, नईदिल्ली।

फोन : 26182079, 26107405, ई–मेल : enabm sa@yahoo.com

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मंत्रालय

भारत सरकार

योजना

वर्ष : 54 • अंक : 1 • जनवरी 2010 • पौष-माघ, शक संवत 1931 • कुल पृष्ठ : 56

प्रधान संपादक
सोनम थरगे

वरिष्ठ संपादक
राकेशरेणु

संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय

538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : exeed.yojana@gmail.com
yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
जे.के. चंद्रा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir_icm@yahoo.co.in

आवरण : **साधना सक्सेना**

इस अंक में

संपादकीय	–	3
भारतीय गणतंत्र के 60 वर्ष : उपलब्धियां एवं चुनौतियां	प्रतिभा देवीसिंह पाटिल	5
भारत की अर्थव्यवस्था पर एक नज़र	यागा वेणुगोपाल रेड्डी	9
विकास के प्रतिमानों की त्रासदी	सुभाष शर्मा	11
सफल प्रयोगों के छह दशक	उमेश चतुर्वेदी	16
भारत में जनस्वास्थ्य : थोड़ी हक़ीक़त ज्यादा फ़साना	ए.के. अरुण	18
भारत में परिवहन : भविष्य की रूपरेखा	ई. श्रीधरन	23
भारतीय कृषकों की दशा	विनोद कुमार सिन्हा	26
भारत की अतुलनीय छलांग	अवधेश कुमार	29
नागरिकोन्मुखी सुशासन	जयप्रकाश नारायण	31
सभी का समाज एक बड़ी चुनौती	ऋतु सारस्वत	34
झरोखा जम्मू-कश्मीर का	–	36
संविधान निर्माण के अगुआ राजेंद्र प्रसाद	मृदुला सिन्हा	38
शोधयात्रा : मेरीन इंजन और रिवर्सिबल रिडक्शन गीयर	बी. मोहनलाल	41
जलवायु परिवर्तन पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्य	सुरेश अवस्थी	43
डब्ल्यूटीओ में विशेष एवं विभेदक व्यवहार	बद्री बिशाल त्रिपाठी	45
जहां चाह वहां रहा : प्लास्टिक थैलियों से छुटकारा	संजय दवे	48
हिंद स्वराज : सभ्यता विमर्श का समावेशी पाठ	सरोज कुमार वर्मा	49
ख़बरों में	–	52

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली-110066 दूरभाष : 26100207, 26105590, तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं :- सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : 100 रु. **द्विवार्षिक :** 180 रु.; **त्रैवार्षिक :** 250 रु.; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** 500 रु.; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** 700 रु.

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए 'योजना' उत्तरदायी नहीं है।

Ranked best school in imparting training in IAS Exam.*

*(Business Sphere, Feb. 2009)

KSG

Passionate about your success...

G.S.

with

DR. Khan

(पूर्व में, भूगोल विभाग दिल्ली स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स, दिल्ली विश्वविद्यालय में लैक्चरर)

पी.ओ.डी. तकनीक* द्वारा सामान्य अध्ययन की तैयारी

केवल खान स्टडी ग्रुप द्वारा

सामान्य अध्ययन में 18 वर्षों के अध्यापन अनुभव से डॉ. खान द्वारा विकसित एक अनुपम विधि

सामान्य अध्ययन

आपके व्यक्तिगत लक्ष्य में सहभागी

वैकल्पिक विषय

● इतिहास ● मनोविज्ञान ● लोक प्रशासन

प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा हेतु उपलब्ध पत्राचार कोर्स

- सामान्य अध्ययन (English/हिन्दी)
- भूगोल (English/हिन्दी)
- इतिहास (English/हिन्दी)
- लोक प्रशासन (English/हिन्दी)
- समाजशास्त्र (English/हिन्दी)
- मनोविज्ञान (English/हिन्दी)

छात्र-छात्राओं के लिए पृथक होस्टल की सुविधा में सहयोग

विवरण पुस्तिका हेतु रू.50/- का डीडी/एमओ भेजें

Separate Batches for English & Hindi Medium

KSG खान स्टडी ग्रुप स्वयं कठिन परिश्रम में विश्वास रखता है; हमें यह अपेक्षा है कि मात्र वे प्रत्याशी ही प्रवेश लें जो कठिन परिश्रम के लिए तैयार हों। ध्यान रहे: हमें सफलता के किसी शॉर्ट-कट की जानकारी नहीं है।

KHAN STUDY GROUP

2521, Hudson Line, Vijay Nagar Chowk, Near G.T.B. Nagar Metro Station, New Delhi - 110 009

Ph: 011-45552607, 45552608, 27130786, 27131786, 09717380832, send us mail: drkhan@ksgindia.com

You can also download Registration Form from our Website: www.ksgindia.com

YH-1/10/1

संपादकीय

वैश्विक सभ्यताओं ने जिस पथ पर यात्राएं की हैं उस पर गणतंत्र के साठ वर्ष एक छोटा-सा कदमभर ही हैं। परंतु जब एक अरब लोग साठ वर्ष पूरे होने पर उत्सव मनाते हैं तो यह निश्चित ही महत्वपूर्ण उपलब्धि हो जाती है। ऐसा विशेषकर तब जब गणतंत्र के रूप में भारत के निर्माण का उत्सव मनाने के उचित कारण हैं।

लंबे समय से भारतीय गणतंत्र की कहानी, वायदों और संभावनाओं की दास्तां रही थी। परंतु सुधी पाठक, ज्यों-ज्यों *योजना* के इस अंक के पृष्ठ पलटेंगे उन्हें अहसास होगा कि प्रतिष्ठित लेखक केवल संभावनाओं के बारे में चर्चा नहीं कर रहे हैं। उनमें से अनेक ने अब तक की उपलब्धियों की चर्चा की है तो कुछ अन्य निकट भविष्य की उपलब्धियों के प्रति आशान्वित भी हैं। अनेक क्षेत्रों में भारत की गौरव गाथा शुरू हो चुकी है। उत्सव मनाने की यह एक बड़ी वजह है।

परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि अभी भी कठिन लग रहे तमाम कार्यों के प्रति हमें कोई चिंता नहीं है। यह तो अवश्यंभावी है। एक अरब लोगों को लेकर आगे बढ़ने और उनके लिए कामयाबी के मुक़ाम हासिल करने के लिए साठ वर्षों की अवधि कम ही है। परंतु इन वर्षों में जो कुछ भी हासिल हुआ है वह शानदार है, क्योंकि मानव इतिहास में इनमें से अनेक का कोई सानी नहीं है। कुछ दिनों पूर्व भारत की जनसंख्या के आधे से अधिक लोगों को टेलीफोन सेवाएं उपलब्ध हो गई हैं। कम-से-कम दस करोड़ लोगों को रोज़गार गारंटी कार्यक्रम (नरेगा) के माध्यम से काम का अधिकार देने वाला सर्वथा पहला उदाहरण भारत ने पेश किया है।

इन सब उपलब्धियों के बीच देश की प्रतिव्यक्ति आय बढ़कर अड़तीस हज़ार रुपये प्रतिवर्ष हो गई है और सकल घरेलू उत्पाद की दर 6.5 प्रतिशत रही है। वह भी ऐसे कठिन दौर में जब विश्व भर में मंदी छाई हुई है और चीन को छोड़कर दुनिया के अनेक देश विकास के लिए संघर्ष करते प्रतीत हो रहे हैं।

भारत की गौरव गाथा हाल के वर्षों में सबसे दिलचस्प रास्ते पर आगे बढ़ चुकी है। दैनिक कामगारों और सब्ज़ी विक्रेताओं को वित्तीय समावेशन के ज़रिये बैंकिंग प्रणाली से जोड़ना एक ऐसी कहानी है जिसे सब सुनना चाहेंगे।

योजना के प्रस्तुत अंक के अंदरूनी पृष्ठों में ऐसी अनेक कहानियां पिरोई हुई हैं। यह इस बात को दर्शाता है कि इस तरह के बुनियादी प्रयासों से अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्र में निवेश से उद्यमियों को लाभ मिलना निश्चित है। ऐसा होना भी चाहिए। भारत के संविधान में सभी को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय देने का वचन दिया गया है। कहानी के राजनीतिक पहलू के बारे में इस दशक के प्रारंभ तक लोगों की दिलचस्पी बनी रही। वहां से अब आर्थिक न्याय की ओर यात्रा, वर्तमान दशक का आकर्षण है। और जब यह यात्रा पूरी होगी तीनों न्यायों में से सबसे कठिन सामाजिक न्याय का मार्ग शुरू होगा। यह किसी नये भारत का वचन नहीं है बल्कि उन कदमों की रूपरेखा है जिन पर काम किया जा रहा है। *योजना* के इस अंक में इस प्रकार के विषयों से जूझते तमाम लेखकों के अर्थपूर्ण और गंभीर लेख आपको पढ़ने को मिलेंगे। यह सभी लेख भारत की गौरव गाथा के अनेक संगत विषयों पर आधारित हैं। ,

सभी सम्मानित पाठकों को नववर्ष की शुभकामनाएं। ❑

The McGraw·Hill Companies

टाटा मैक्ग्रा हिल

सिविल सेवा परीक्षा हेतु प्रकाशन के गौरवमयी 25 वर्ष....

प्रारंभिक परीक्षोपयोगी पुस्तकें

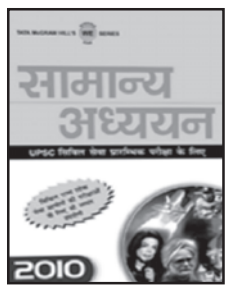

ISBN : 9780070678866
PRICE : 999/-

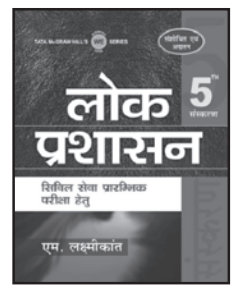

ISBN : 9780070679719
PRICE : 465/-

ISBN : 9780070660151
PRICE : 375/-

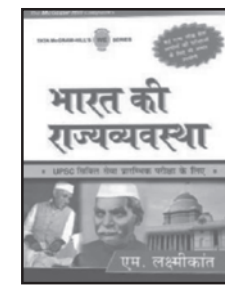

ISBN : 9780070620322
PRICE : 340/-

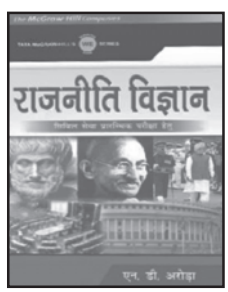

ISBN : 9780070655676
PRICE : 395/-

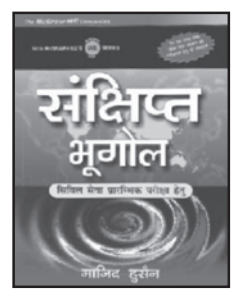

ISBN : 9780070082540
PRICE : 325/-

ISBN : 9780070679757
PRICE : 375/-

ISBN : 9780070667754
PRICE : 495/-

ISBN : 9780070679733
PRICE : 225/-

ISBN : 9780070090033
PRICE : 255/-

Mc Graw Hill Education

Tata McGraw Hill Education Pvt. Ltd.

Noida : B-4, Sector-63, Noida - 201 301 Ph.: 91-120-4383400,
E-mail : testprep@mcgraw-hill.com
North India : Naveen Bagga: 09810079532, Ashish Prashar: 09717005237, Deepak Shrivstava: 09794679797
East India : Joy Ghosh: 09435342833, Anindaya: 09836425322, Zahid Ali: 09334135451
West India : Arup: 09975518652, Sachin Gajrawala: 09898242368

संघ लोक सेवा आयोग मुख्य परीक्षोपयोगी पुस्तकें भी उपलब्ध

Visit www.upscportal.com for online purchase of Tata McGraw-Hill Testprep books.

YH-1/10/2

भारतीय गणंतत्र के साठ वर्ष
उपलब्धियां एवं चुनौतियां

● श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटिल

परंतु हमें अपनी उपलब्धियों के बारे में आत्मतुष्ट नहीं होना है, क्योंकि हमारे समक्ष ज्यादा बड़ी चुनौतियां हैं जिन पर हमें काबू पाना है ताकि प्रगति और समावेशी विकास को पक्क़े तौर पर सुनिश्चित किया जा सके। भारतीय गणतंत्र के साठवें पड़ाव पर खड़े हमें देश की समृद्धि और इसके प्रत्येक नागरिक के साथ-साथ समूची मानवता के कल्याण के प्रति पुनर्समर्पित होना होगा

लोकतांत्रिक राष्ट्र जब समाज कल्याण और प्रगति के प्रति अपने संकल्प को पूरा करने के लिए निरंतर परिश्रम करता है, स्वतंत्रता, समानता और न्याय के सिद्धांत मिलकर उसकी आत्मा की रचना करते हैं। एक राष्ट्र के रूप में छह दशक पहले हमने भी इसी प्रकार का संकल्प लिया था ताकि प्रगति, समृद्धि और समावेशी विकास की दिशा में आगे बढ़ते वक्त ये सिद्धांत हमारा पथ प्रदर्शन करते रहें। पिछले 60 वर्षों में हमने बहुत कुछ हासिल किया परंतु अब तक कि हमारी प्रगति के बावजूद हमें खामियों पर भी ध्यान देना होगा ताकि हम और भी बेहतर भविष्य का निर्माण कर सकें। एक राष्ट्र के रूप में हमें अपनी खूबियों और खामियों का आत्मविश्लेषण करना होगा और देश की समृद्धि और खुशहाली बनाए रखने के लिए समर्पित भाव से काम करना होगा। ऐसा करते समय हम मानवता और दया के उन्हीं सिद्धांतों से प्रेरणा लेंगे जिन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हमें राह दिखाई थी और एक लोकतांत्रिक राष्ट्र के निर्माण की हमारी अभिलाषा को साकार रूप दिया था।

1950 में गणतंत्र की स्थापना से हमारी वह यात्रा शुरू होती है जिस पर चलकर हम आज इस मुक़ाम तक पहुंचे हैं। यह असाधारण घटना अपने आप में हमारी उपलब्धियों की असाधारण प्रकृति की प्रतीक है, क्योंकि मानव इतिहास में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था जब इतने सारे लोग स्वतंत्रता और लोकतंत्र के अपने संकल्प को लेकर एकजुट हुए हों। भाषा, संस्कृति, इतिहास और स्थानीय अस्मिताओं को लेकर विभाजित यह देश एक हो गया और इस विविधता को अपनी सबसे बड़ी ताक़त में बदल डाला।

इस राष्ट्र के लोगों ने एक मज़बूत और समृद्ध भारत देश का सपना देखा था और यही वह स्वप्न है जिसने उनको साथ लाकर एक कर दिया। परंतु यदि उपलब्धियां असाधारण थीं तो नये गणतंत्र के समक्ष चुनौतियां भी बहुत भारी थीं। निरक्षरता, भूख, सामाजिक भेदभाव और निर्धनता प्रमुख समस्याएं थीं जो राष्ट्र और देशवासियों से तुरंत ध्यान देने की मांग कर रही थीं। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इस स्थिति का सार इन शब्दों में व्यक्त किया था, "मुझे लगता है कि भारत में आज जो कार्य हमें करने हैं वे स्वतंत्रता संघर्ष के दिनों के हमारे कार्यों से कहीं अधिक मुश्किल हैं। तब हमारे सामने ऐसी विरोधाभासी दावे नहीं थे जिनका हमको निपटारा करना हो, लोगों में बांटने के लिए रोटियां और मछलियां नहीं थीं और न ही बांटने के लिए शक्तियां और अधिकार थे। अब हमारे पास यह सब है।" इस प्रकार राष्ट्र के समक्ष जो प्रारंभिक चुनौतियां थीं वे मुख्यरूप से बुनियादी ढांचे, भौतिक और संस्थागत दोनों के निर्माण से संबंधित थीं ताकि समाज के विभिन्न पहलुओं का कामकाज सुचारू रूप से होना सुनिश्चित किया जा सके। राष्ट्र निर्माण के इस चरण में कठिन परिश्रम और समर्पण की आवश्यकता थी। यह हमारा सौभाग्य था कि हमारे पास नेता

ऐसे थे जिन्होंने तमाम कठिनाइयों के बावजूद इन चुनौतियों पर विजय पाई।

आज हमारा राष्ट्र विभिन्न चौराहों पर खड़ा है और आज जो चुनौतियां हमारे सामने हैं वे उनसे काफी भिन्न हैं जो साठ बरस पहले थीं। परंतु हमारे गणतंत्र की आधारशिला रखनेवाले सिद्धांत अभी भी वही हैं और हम उन्हीं से मार्गदर्शन प्राप्त करते रहेंगे। ऐसे बहुत कम देश हैं, विशेषकर विकासशील विश्व में जो समय पर खरी उतरी हमारे यहां की सुदृढ़ लोकतांत्रिक संस्थाओं के होने का दावा कर सकते हों। परंतु संस्थाओं और व्यवस्थाओं दोनों को निरंतर इस प्रकार रूपायित किया जाना चाहिए कि वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुसार काम कर सकें और लोगों के कल्याण को सुनिश्चित करने में वे प्रभावी सिद्ध हो सकें। संविधान संशोधन (1992) के ज़रिये पंचायती राज की स्थापना जैसे प्रयास हमारे राष्ट्र की लोकतांत्रिक पद्धति के विकास के प्रतीक हैं। इसी के कारण शक्तियां और अधिकार निचले स्तर तक पहुंची हैं ताकि वे प्रभावी तथा कार्यकुशल बन सकें। आज ऐसे प्रतिनिधियों की संख्या 32 लाख हैं जो गांवों, कस्बों और शहरों से इस प्रणाली के अंतर्गत चुने गए हैं। गौरतलब है कि इन निर्वाचित प्रतिनिधियों में 12 लाख महिलाएं हैं। लोकतंत्र के इतिहास में निर्वाचित प्रतिनिधियों की यह सबसे बड़ी संख्या है। लोगों को सशक्त बनाने वाला औज़ार लोकतंत्र, भारत में अपने विशिष्ट और अनूठे देशज अंदाज में अभिव्यक्त होता है।

किसी राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि उसकी प्रगति और विकास का अभिन्न हिस्सा होती है। आज हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे हैं, जहां वैश्वीकरण और विश्व एकीकरण विश्व के आर्थिक परिदृश्य को तेज़ी से बदल रहे हैं। हमारे बुनियादी आर्थिक ढांचे को भी तदनुसार अपने को ढालना होगा। प्रारंभिक दौर में सार्वजनिक क्षेत्र ने हमारी विकास प्रक्रिया को शुरू करने के लिए फ़ौरी तौर पर आवश्यक बुनियादी ढांचे की रचना की। लेकिन सुदृढ़ निजी क्षेत्र आज धीरे-धीरे परंतु अनवरत रूप से राष्ट्र की आर्थिक समृद्धि सुनिश्चित करने में समान रूप से अपनी भागीदारी निभा रहा है। हम इस बात को लेकर आश्वस्त हो सकते हैं कि हमने अपने लिए विकास के जो लक्ष्य निर्धारित किए हैं उसे हासिल कर सकेंगे। हमारी अर्थव्यवस्था की शानदार उपलब्धियों के कारण भारत आज अंतरराष्ट्रीय समुदाय में एक शक्तिशाली देश के रूप में उभर कर सामने आया है।

परंतु हमें अपनी उपलब्धियों के बारे में आत्मतुष्ट नहीं होना है, क्योंकि हमारे समक्ष ज्यादा बड़ी चुनौतियां हैं जिन पर हमें काबू पाना है ताकि प्रगति और समावेशी विकास को पक्क़े तौर पर सुनिश्चित किया जा सके। कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिन पर तुरंत ध्यान देने की ज़रूरत है। ये हैं– शिक्षा, स्वास्थ्य और पोषण, महिला सशक्तीकरण, ग्रामीण विकास इत्यादि। विकास के लाभ अभी भी हमारे समाज के सभी वर्गों तक पहुंचना बाकी है। समाज के वंचित और कमज़ोर वर्गों की आवश्यकताओं को पूरा किए बिना हम भविष्य की ओर नहीं देख सकते। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और समाज के अन्य कमज़ोर वर्गों को समर्थ और सशक्त बनाने पर विशेष रूप से ज़ोर देना होगा। हमारे लिए यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि उन्हें भी समाज में उचित स्थान मिले और वे भी राष्ट्र की प्रगति के फल का आनंद ले सकें। उच्च विकासदर के अपने लक्ष्य का पीछा करते समय हमारे प्रयास और संकल्प ऐसे होने चाहिए कि देश के सभी लोग इसका लाभ उठा सकें।

विश्व का भविष्य, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुई प्रगति से ही आकार ग्रहण करेगा क्योंकि हमारा एकीकृत ग्रह (पृथ्वी) बराबर बढ़ता हुआ ज्ञान आधारित होता जा रहा है। यद्यपि सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों तथा जैव-प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में हमें मज़बूत बढ़त मिली हुई है। तथापि हमें अनुसंधान एवं विकास में आगे और निवेश ज़ारी रखना होगा। हमें अपनी शिक्षण संस्थाओं को सुदृढ़ और उन्नत बनाना होगा। विद्यार्थियों को मूलभूत विज्ञान के अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना होगा। राज्य सरकारों और शिक्षण संस्थाओं को विज्ञान विषयों की ओर आकर्षित करने हेतु विशेष प्रयास करने चाहिए। देश के लोगों को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण औज़ार है। ज्ञान की खोज़ सदा से ही देश के जातीय संस्कार का अंग रही है। इन्हीं सब कारणों से स्वतंत्रता के बाद से ही हमने संगत रीति से शिक्षा का सुदृढ़ ढांचा खड़ा करने का प्रयास किया है। अब जब हम वर्ष 2010 तक सर्वशिक्षा अभियान (प्राथमिक) के लक्ष्य को प्राप्त करने में जुटे हुए हैं हमें उच्चतर शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के अध्ययन के लिए और अधिक विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना होगा। मेरा दृढ़ विश्वास है कि आधुनिक शिक्षा का प्रकाश सभी व्यक्तियों, स्त्री, पुरुष, बालक-बालिका तक अवश्य पहुंचना चाहिए।

महिलाएं हमारी जनसंख्या का आधा हिस्सा हैं परंतु उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना होता है। महिलाओं के सशक्तीकरण और संरक्षण के कानून को प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए। हमें बाल विवाह, बालिका भ्रूण हत्या और दहेज जैसी सामाजिक कुरीतियों को भी दूर करना होगा। मद्यपान और मादक द्रव्यों के सेवन से व्यक्ति, परिवार और समाज निर्बल बन रहे हैं चिंता का यह एक और विषय है।

सामाजिक सामंजस्य के बिना प्रगति लंबे समय तक नहीं बनी रह सकती। यह एक ऐसे धागे की तरह है जो अनेक रंग और सुगंधि के सुंदर फूलों को एक हार के रूप में पिरो देता है। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि इस महान लोकतांत्रिक गणतंत्र के निर्माण के समय जो एकता हमने दिखाई थी वह बनी रहे और हम स्वतंत्रता तथा समानता के झंडे तले एक होकर खड़े रहें। विकास यात्रा के दौरान हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारा लक्ष्य केवल संपत्ति (समृद्धि) अर्जित करना नहीं है। हमारा लक्ष्य मानवीय समाज की रचना करना होना चाहिए। हम संकीर्ण मनोवृत्ति नहीं अपना सकते। दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति हम उदासीन नहीं हो सकते। समाज को नि:शक्त और वृद्ध नागरिकों के प्रति भी मददगार और सकारात्मक रवैया अपनाना होगा।

सरकार ने वर्ष 2007 से 2012 तक की ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान न केवल विकास की गति को तेज़ करने बल्कि समावेशी विकास के लिए कई उपाय शुरू किए हैं। यह सभी की प्रगति और समृद्धि के लिए महत्वपूर्ण है। सरकार ने भारत निर्माण, महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना, ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन, जवाहरलाल नेहरू शहरी नवीकरण मिशन और सर्वशिक्षा अभियान जैसे अनेक अग्रगामी कार्यक्रम शुरू किए हैं। यह सभी कार्यक्रम लोगों के जीवन में सुधार लाने के लिए शुरू किए गए हैं। परंतु इनको अमल में लाना एक चुनौती है। एक प्रश्न हमें अपने आप से पूछना

होगा कि हमारी कार्यशैली कितनी प्रभावी है ओर उसकी खामियां क्या हैं? लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने हेतु समूचे सरकारी तंत्र को सलीक़े से काम करना होगा। मेरा विश्वास है कि कार्यक्रमों और परियोजनाओं पर प्रभावी ढंग से अमल के लिए उनमें लोगों की भागीदारी बहुत महत्वपूर्ण है। सभी को समयबद्ध कार्यक्रम के अनुसार काम करना चाहिए और वह भी पूरी जवाबदारी और पारदर्शिता के साथ।

एक राष्ट्र के रूप में हम व्यापक वैश्विक मंच पर अपनी भूमिका और मानवता के प्रति अपने उत्तरदायित्व के बारे में सचेत हैं। हमारी सभ्यता के विकास के प्रारंभिक दिनों से ही हमने यह माना है कि समूचा विश्व एक है और मानवता एकल परिवार *वसुधैव कुटुबंकम* हमारा मूलमंत्र रहा है। भारत सभी देशों के साथ मैत्री और सहयोग के संबंध स्थापित करने के प्रति वचनबद्ध है। आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में भारत के संबंध पूरे विश्व के साथ ग़हरे होते जा रहे हैं। भारत एक ऐसा देश है जिसने सदा से ही क्षेत्रीय और वैश्विक शांति एवं स्थिरता के संवर्धन में योगदान किया है और वह आगे भी ऐसा करता रहेगा।

आज एक राष्ट्र के रूप में हम देश के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ पर खड़े हैं। हमारे गणतंत्र के आधार को सुदृढ़ बनाने के लिए जहां हम अपने पूर्वजों के योगदान को शिरोधार्य करते हैं वहीं हमें देश की प्रगति और विकास को नयी दिशा देने की जिम्मेदारी भी वहन करनी होगी। हमारे आज के निर्णयों का भावी पीढ़ियों पर स्थायी प्रभाव पड़ेगा और वे देश के भविष्य का आकार तय करेंगे। मैं 14 और 15 अगस्त (1947) को भारत की स्वतंत्रता की मध्यरात्रि को दिए गए देश के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू के प्रसिद्ध नियति के साथ भेंट भाषण के कुछ अंशों को उदधृत कर अपनी बात समाप्त करना चाहूंगी; उन्होंने कहा था :

"भारत की सेवा का अर्थ है लाखों दुखी लोगों की सेवा करना। इसका अर्थ है निर्धनता, अज्ञानता, रोगों और अवसर की असमानता को दूर करना। हमारी पीढ़ी के महानतम व्यक्ति की महत्वाकांक्षा प्रत्येक व्यक्ति की आंखों से आंसू पोछना रही है। यह हमारी सामर्थ्य से परे हो सकता है परंतु जब तक आंसू और कष्ट हैं हमारा काम ख़त्म नहीं होगा।"

यात्रा लंबी है परंतु हमने काफी दूरी तय कर ली है। किसी अन्य महान यात्रा की तरह हमने सफलता और गौरव के आनंदभरे क्षण भी भोगे हैं और दुख तथा वेदना के भी। हमने बाधाओं पर विजय प्राप्त की है और अवरोधों को दूर किया है क्योंकि महान सभ्यता वाली अपनी मातृभूमि भारत के राष्ट्र रूप में अंतर्निहित एकता के प्रति और उसके उज्ज्वल भविष्य में हमारा सदा से ही दृढ़ विश्वास रहा है। हमेशा से हमें अपने देशवासियों की प्रतिभा और जुझारूपन के बारे में पूर्ण भरोसा रहा है। इस यात्रा के दौरान हमें स्वतंत्रता, सहनशीलता और बहुलता के मूल्यों से प्रेरणा मिलती रही है। इन्हीं मूल्यों ने भारत को विविधता में एकता वाले देश के रूप में एक विशिष्ट पहचान दी है। विभिन्न धर्मों, भाषाओं और रीति-रिवाज़ों को मानने वाले लोगों के देश भारत को अपनी प्रत्येक विविध इकाइयों से शक्ति प्राप्त हुई है जो उसकी आत्मा के रग-रग में समाई हुई है।

आज एक राष्ट्र के और इसके व्यक्तिगत नागरिक के रूप में हमें भारत की एकता की भावना और इसकी बहु-सांस्कृतिक, बहु-धार्मिक और बहु-प्रजातीय चरित्र को बनाए रखने का प्रण लेना होगा। भारतीय गणतंत्र के साठवें पड़ाव पर खड़े हमें देश की समृद्धि और इसके प्रत्येक नागरिक के साथ-साथ समूची मानवता के कल्याण के प्रति पुनर्समर्पित होना होगा। ❑

(लेखिका भारत की राष्ट्रपति हैं)

योजना

आगामी अंक

फरवरी 2010 • बैंकिंग

अर्थव्यवस्था को गति देने में बैंकिंग क्षेत्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बीते कुछ वर्षों के दौरान भारत में बैंकिंग क्षेत्र ने स्वयं बहुआयामी प्रगति की है। योजना का फरवरी 2010 अंक बैंकिंग क्षत्र और उसके सम्मुख खड़ी विविध चुनौतियों के विश्लेषण पर केंद्रित होगा।

मार्च 2010 • बजट 2010-11 विशेषांक

केंद्रीय बजट हर वर्ष केंद्र सरकार की वित्तीय दृष्टि और वर्षभर की विकास योजनाओं की तस्वीर लेकर उपस्थित होता है। वित्त वर्ष के दौरान सरकार की विकास योजनाओं हेतु अपेक्षित संसाधनों के स्रोतों की जानकारी भी इससे मिलती है। योजना का मार्च'10 विशेषांक बजट 2010-11 की विस्तृत विवेचना पर केंद्रित होगा।

IAS 2010

समेध IAS
An Institute for IAS/PCS

कक्षाएं प्रारम्भ / नामांकन जारी

इतिहास
द्वारा
सुजीत सिंह

- 2009 के P.T. में 91 प्रश्न सिर्फ Class Notes से।
- Mains 2009 में लगभग सभी प्रश्न Class Notes+Crash Course से।

सा. अध्ययन
द्वारा
सुजीत सिंह, अनिल श्रीवास्तव एवं टीम

हिन्दी साहित्य
द्वारा
रवीन्द्र मिश्रा

व्याख्या वाले प्रश्नों (120 Marks) पर विशेष तकनीक के द्वारा तैयारी कराने वाला एकमात्र संस्थान

नोट : UPPCS एवं अन्य राज्य सिविल सेवा परीक्षाओं के लिए विशेष तैयारी

Ph. : 011-27652138
9540158227, 9310262701

IAS संस्कृत की तैयारी हेतु समर्पित भारत का गौरवमय संस्थान PCS

PANINI CLASSES

Director- Mini Chandni

संस्कृत साहित्य
द्वारा
कैलाश बिहारी एवं एस. कुमार

कक्षागत विशेषताएँ

- प्रारंभिक चरण से व्याकरण की संपूर्ण तैयारी।
- नियमित रूपेण संस्कृत अनुवाद का अभ्यास।
- संस्कृत-निबंध लेखन का आत्मनिष्ठ प्रयास।
- संस्कृत व्याख्या लेखन की नयी वैज्ञानिक पद्धति।
- प्रतिखण्ड पृथक्-पृथक् साप्ताहिक टेस्ट परीक्षा।
- सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का संशोधित अध्ययन सामग्री।
- अनदेखा पाठांश (Unseen Passage) का सतत् अभ्यास ।
- संभावित बदलती प्रश्नों की प्रवृत्ति पर कक्षा में विशेष परिचर्चा।

नियमित कक्षारम्भ 7.30 AM एवं 6.00 PM

नामांकन प्रारम्भ

IAS Founation Course Start : Feb. 10

नोटः संस्कृत अभ्यर्थी के परेशानियों को देखते हुए, विगत वर्षों के प्रश्नपत्र (IAS) पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी पुस्तकें और निर्देशिका पुस्तिका (IAS Guide Line) "पाणिनि संस्थान" में उपलब्ध, अब बाहर से कुछ भी खरीदने की आवश्यकता नहीं।

अन्य कक्षाएँ NET/JRF BATCH START 28th FEB., 10

समयाभाव अथवा किसी कारणवश जो PANINI CLASSES में नहीं आ सकते, वे पत्राचार के माध्यम से नवीन अध्ययन सामग्री प्राप्त कर सकते हैं, इसके लिए दिल्ली में भुगतान योग्य अपेक्षित राशि (6000/-) का बैंक ड्राफ्ट "MINI CHANDANI" के नाम भेजे। साथ ही दो फोटों एवं जन्म तिथि सहित पूरा पता।

Contact
PANINI CLASSES
09312100162
09958122675
09311724189

A-18, (BASEMENT) Young Chamber, (Behind Batra Cinema), Dr. Mukherjee Nagar, Delhi - 9

YH-1/10/3

भारत की अर्थव्यवस्था पर एक नज़र

● यागा वेणुगोपाल रेड्डी

कुछ लोगों का ख्याल है कि पिछली सदियों के दौरान भारत एक ग़रीब देश रहा है हालांकि कभी-कभी इसकी समृद्धि की भी इतिहास में चर्चा है। लेकिन अगर विदेशी यात्रियों के भारत वर्णन पर ध्यान दें और भारत पर आक्रमण करने वालों की बात मानें, तो संकेत मिलता है कि कम-से-कम 17वीं शताब्दी तक भारत एक समृद्ध देश रहा। ऑरगेनाइजेशन फॉर इकोनॉमिक कारपोरेशन एंड डेवलपमेंट के एक प्रकाशन के अनुसार वर्ष 1700 के आसपास भारत की अर्थव्यवस्था 90.8 अरब अमरीकी डॉलर के बराबर थी जो उस समय के दुनिया के सकल घरेलू उत्पाद की तुलना में 24.4 प्रतिशत थी (एंगेस मेडीसन, 2001- द *वर्ल्ड इकोनॉमी, ए मिलेनियम पर्सपेक्टिव - ओईसीडी)।*

इसके अलावा प्रोफेसर शिवसुब्रमण्यम ने अपनी पुस्तक द *नेशनल इनकम ऑफ इंडिया इन द ट्वेंटीएथ सेंचुरी* में लिखा है कि 20वीं सदी के पहले पांच दशकों (1901 से 1947 तक) के दौरान भारत का सकल घरेलू उत्पाद स्थिर था और इस अवधि में सकल घरेलू उत्पाद की वृद्धिदर 0.9 प्रतिशत थी। हालांकि आबादी का विकास 0.8 प्रतिशत की दर से हो रहा था (शिवसुब्रमण्यम एस, 2000, द *नेशनल इनकम ऑफ इंडिया इन द ट्वेंटीएथ सेंचुरी*, नयी दिल्ली ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस)।

बीसवीं शताब्दी के पहले पांच दशकों की स्थिर विकास दर की तुलना में 1950 से 1980 तक वार्षिक विकास दर औसतन 3.5 प्रतिशत रही जो कि पहले की तुलना में बेहतर थी। इसी तरह प्रतिव्यक्ति विकास दर की स्थिरता कम हुई और 1980 के आसपास यह औसतन 1.1 प्रतिशत हो गई। 1980 के बाद से औसत विकास दर 6 प्रतिशत के आसपास हो गई जबकि संकट से पहले के वर्षों के दौरान यह औसतन 9 प्रतिशत थी। यह ध्यान देने की बात है कि अब तक के गंभीर मुद्दों का भारत की अर्थव्यवस्था पर कुछ खास असर नहीं हुआ और इसका सकल घरेलू उत्पाद विकास 2008-09 और 2009-10 के दो मुश्किल वर्षों में भी 7 प्रतिशत के आसपास रहा है।

भारतीय अनुभव से साफ़ संकेत मिलता है कि 1950 और 1960 के दशकों के दौरान मिली-जुली अर्थव्यवस्था के मॉडल और नियोजित विकास की रणनीति से विकास दर में सुधार लाने में पहले के मुक़ाबले अच्छी सफलता मिली और इसके कारण वर्तमान औद्योगिक आधार के लिए मज़बूत नींव पड़ी। अब यह एक जीवंत उद्यमी वर्ग द्वारा संचालित ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था है। इसमें सामाजिक-आर्थिक सचलता में पर्याप्त सुधार हो रहा है। लेकिन प्रारंभ के दशकों के दौरान देश के अंदर ही आयातों का विकल्प ढूढ़ने की नीति का परिणाम यह रहा कि उत्पादकता में गिरावट आई और अर्थव्यवस्था की लागत बढ़ गई। इस बात को महसूस करने के बाद वर्ष 1980 के दशक की शुरुआत में महत्वपूर्ण नीतिगत परिवर्तन किए गए जिनका उद्देश्य 70 के दशक और 80 के शुरुआती वर्षों में तेल के कारण लगे झटके से उबरना था। इन नीतिगत उपायों के चलते 80 के दशक में भारत की विकास दर बढ़ी लेकिन इसमें कुछ असंतुलन भी पैदा हुए जिनका परिणाम था 1991 का संकट जिसके चलते व्यापक और सतत सुधारों की शुरुआत की गई। वर्ष 1991 के बाद से जो नीतियां अपनाई गईं उनके कारण अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ नींव रखने के पर्याप्त अवसर मिले और आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में इसका सुदृढ़ आधार तैयार किया गया।

सुधारों की खास बातें

यहां भारत में वर्ष 1991 में शुरू हुई आर्थिक सुधार प्रक्रिया की कुछ खास बातों पर प्रकाश डाला जा रहा है:

पहला यह है कि भारत में सुधारों के प्रति चौकसी रवैया अपनाया गया। इसके लिए उपयुक्त उपाय किए गए और विभिन्न क्षेत्रों में पूरक सुधार शुरू किए गए। उदाहरण के लिए मुद्रा संबंधी, राजकोषीय और बाहरी क्षेत्रों में तथा वित्तीय संस्थाओं के विकास और बाज़ार के विकास पर ध्यान दिया गया। इन सबका उद्देश्य था कि सभी क्षेत्रों में सामंजस्य के साथ प्रगति हो।

दूसरा, उदारीकरण की प्रक्रिया के बाद घरेलू विकासक्रम संवेदनशील रहा। मुद्रा और राजकोषीय क्षेत्रों में यह बात खासतौर से देखी गई। सुधारों पर व्यापक रूप से बहस हुई और उन्हें स्वदेशी जरूरतों के मुताबिक डिज़ाइन किया गया।

तीसरा, सुधारों के प्रति धीरे-धीरे लेकिन दृढ़तापूर्ण रवैया अपनाया गया। एकदम से सुधार करने की नीति नहीं अपनाई गई। सुधारों को

आमतौर पर एक प्रक्रिया के रूप में देखा गया, घटना के रूप में नहीं। इस रवैये में उदारीकरण की रफ़्तार सामान्य रखी गई और इस बात का ध्यान रखा गया कि भरोसेमंद तरीक़े से आगे बढ़ना ठीक रहेगा।

चौथी बात यह कि सुधार प्रक्रिया को तेज़ करने में सबसे ज्यादा ज़ोर ऊंची विकास दर और कुशलता लाने पर दिया गया। साथ ही सुधारों को समग्र बनाया गया ताकि इसके लाभ सभी वर्गों को मिल सकें और खासतौर से कमज़ोर वर्ग उससे लाभान्वित हो। राज्य और राष्ट्रीय चुनावों में ये महत्वपूर्ण चुनावी मुद्दे बनें।

वर्तमान स्थिति

भारत में सकल घरेलू उत्पाद के विकास की खास बात यह है कि यह अपने आप तेज़ होने वाला है। इसकी विकास दर में विभिन्नता औसत दर्ज़े की रही है। सकल घरेलू उत्पाद के मुक़ाबले बचत और निवेश के प्रतिशत बढ़ गए हैं। उत्पादकता बढ़ती रही है और पूंजी निवेश के अनुपात में उत्पादन भारत में चीन के मुक़ाबले बेहतर रहा है। यहां पर मूल्यों में व्यापक रूप से विविधता रही है इसका कारण तेल और खाने-पीने की चीज़ों के मूल्यों में होने वाली घट-बढ़ थी। वित्तीय क्षेत्र में अद्भुत स्थिरता रही है और हाल के अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संकट के झटकों से यह हमेशा उबरता रहा है। वित्तीय क्षेत्र ने स्थिरता के साथ ही अभूतपूर्व रूप से विकास के काम में सफलतापूर्वक वित्तपोषण किया है। बाहरी क्षेत्र भी काफी सुदृढ़ हुआ है। देश का विदेशी मुद्रा भंडार सुदृढ़ स्तर पर है। इन सबके कारण देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण मज़बूती बनी रही।

देश की अर्थव्यवस्था को ऊपर बताए गए लक्षणों के अनुसार विकसित करते हुए यह भी ज़रूरी है कि उन महत्वपूर्ण समस्याओं की तरफ ध्यान दिया जाए जो बराबर सामने आती रही हैं। कृषि क्षेत्र शुरू से ही स्थिर बना रहा है। निर्माण क्षेत्र में भी उतनी तेज़ी से विकास नहीं हुआ जितना कि होना चाहिए था। प्रशिक्षित और अर्द्धप्रशिक्षित श्रमिकों के रोज़गार के अवसर भी बहुत अच्छे नहीं रहे। सार्वजनिक ऋण का प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद पर भारी बना रहा और इसे दुनिया के किसी भी देश के मुक़ाबले सबसे अधिक माना गया। राजकोषीय घाटा भी अधिक रहा। बिजली और बंदरगाह जैसे बुनियादी सुविधा क्षेत्रों में समस्याएं बनी रहीं। सार्वजनिक शिक्षा और पर्यावरण संबंधी स्थिति पर भी नीति-निर्धारकों को ध्यान देने की ज़रूरत है।

संभावनाएं

भारत में प्रगति के कारण संतुलन बदलता रहा है। संतुलन में यह बदलाव लगभग निरंतर बना रहा और इसका मूल्यांकन करते समय इन पर ध्यान देना ज़रूरी है।

पहला यह कि आर्थिक सुधारों पर चर्चा में संतुलन बदल रहा है। अभी तक अंग्रेज़ी और भाषायी मीडिया में चर्चा चलती रही है कि आर्थिक मुद्दे शहरों के पक्ष में हैं। जबकि भाषायी मीडिया देश में बढ़ रहे 20 करोड़ से ज्यादा तादाद वाले मध्यवर्ग की समस्याओं पर ध्यान देता रहा है। दूसरा यह कि केंद्रीय और राज्य सरकारों के संतुलन में परिवर्तन आए। वैश्वीकरण की तरफ झुकती प्रवृति के चलते केंद्र सरकार ने आर्थिक क्षेत्रों में परस्पर और बहुपक्षीय ज़रूरतों पर ध्यान दिया, जबकि शिक्षा, कानून और व्यवस्था, स्वास्थ्य, बिज़ली जैसे कई महत्वपूर्ण क्षेत्र जिनमें सरकार रचनात्मक भूमिका निभा सकती है, राज्य सरकारों के कार्य क्षेत्र में रहे।

तीसरी बात यह कि राज्य और केंद्र तथा राज्य और राज्यों के बीच संतुलन भी बदल रहा है। राज्य सरकारें अब निजी निवेश के लिए आपस में एक-दूसरे के साथ होड़ कर रही हैं। राज्यों के बीच केंद्र सरकार से सहायता पाने के लिए भी आपस में प्रतियोगिता है और वे इसके ज़रिये आर्थिक विकास को तेज़ करना चाहती हैं।

चौथी बात यह कि सरकारों के अंदर विनियामक एजेंसियां बढ़ रही हैं जिनके कारण सरकारों के विवेकाधिकार कम हो रहे हैं।

पांचवां यह कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्र के उद्यमों के बीच सुधार गतिशील तत्व बन गए हैं। सार्वजनिक उद्यमों को फिर से संतुलित बनाना निजी क्षेत्र को रोकने जैसा है और सार्वजनिक उद्यमों के स्वामित्व में विविधता लाई जा रही है। ये उद्देश्य आंशिक रूप से उनका विनिवेश करके पूरे किए जा रहे हैं।

छठी बात यह कि निजी क्षेत्र के अंदर भी पुनर्संतुलन बनाने का काम नाटकीय ढंग से चल रहा है। औद्योगिक घराने इसको व्यवसायीकरण कहते हैं। औद्योगिक घरानों में नये उच्च शिक्षा प्राप्त और व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित नेताओं की पीढ़ी आ गई है। साथ ही औद्योगिक नेताओं की यह नयी पीढ़ी नये क्षेत्र में पदार्पण कर चुकी है जिनमें सॉफ्टवेयर, फार्मास्युटिकल, बायोटेक और वित्तीय सेवाएं प्रमुख हैं।

और अंत में श्रम और प्रबंधन के बीच संबंधों में भी धीरे-धीरे फिर से नया संतुलन बन रहा है। 1991 के सुधारों के बाद से निश्चय ही इनमें सुधार आया है। पिछले दिनों हड़तालों और कार्यदिवसों की संख्या के बारे में जो आंकड़े मिले, उनसे लगता है कि श्रमिक और प्रबंधन, दोनों क्षेत्रों में परिपक्वता और समझदारी आई है।

नियोजन और सार्वजनिक नीति के सम्मुख चुनौतियां

भारत जैसी विविधतापूर्ण और बड़ी अर्थव्यवस्था के सम्मुख नियोजन और सार्वजनिक नीति संबंधी अनेक चुनौतियां सामने आती हैं। पहली चुनौती यह कि भारत की साठ प्रतिशत जनशक्ति खेती पर निर्भर है जिसका सकल घरेलू उत्पाद में सिर्फ़ 20 प्रतिशत हिस्सा है। इसके अलावा खेती से होने वाले सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर आबादी के विकास दर से थोड़ा ही ज्यादा है। तेज़ी से ग़रीबी मिटाने के लिए यह उपयुक्त नहीं है। इसके अलावा खेती की पैदावार में घट-बढ़ का भी विकास पर असर पड़ता है। कृषि क्षेत्र की विकास दर में वृद्धि करना ज़रूरी है क्योंकि ऐसा करके खाद्य सुरक्षा, मूल्यों की स्थिरता, ग़रीबी शमन और समग्र विकास की निरंतरता सुनिश्चित की जा सकती है।

दूसरी बात यह कि निर्माता क्षेत्र में जबरदस्त विकास दर दर्ज़ की गई है। बुनियादी सुविधाओं में भारी कमी के बावजूद इसने ऐसा कर दिखाया है। निर्माण क्षेत्र के विकास के रास्ते में प्रशिक्षित जनशक्ति की कमी सबसे बड़ी बाधा है। इसके अलावा मौजूदा बुनियादी सुविधाओं में वृद्धि करना भी ज़रूरी है। खासतौर से सड़कों, बंदरगाहों और बिजलीघरों पर ध्यान देना ज़रूरी है। सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा है विनियामक रूपरेखा पर ध्यान देना और निवेश के लिए सही माहौल बनाना। ❑

(लेखक रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया के गर्वनर रह चुके हैं। इस समय वह हैदराबाद विश्वविद्यालय में एमेरिटस प्रोफेसर हैं।

ई-मेल : office.dryir@gmail.com)

विकास के प्रतिमानों की त्रासदी

● सुभाष शर्मा

भारतीय गणतंत्र के साठ वर्ष पूरे होने पर यह आकलन करना निहायत ज़रूरी हो गया है कि 'हमने क्या किया, जीवन क्या जिया'? इसकी तह में जाने का वक़्त आ गया है कि विकास का जो प्रतिमान हमने अपनाया, वह कितना खरा और कितना खोटा है? उसकी दशा और दिशा क्या है? उसके परिणाम क्या हैं वर्तमान एवं अगली पीढ़ियों के लिए? क्या उसे ज्यों-का-त्यों जारी रखने की ज़रूरत है या उसका आमूलचूल परिवर्तन करने की?

बीसवीं सदी के मध्य में भारत सहित विश्व के तमाम देश औपनिवेशिक दासता से मुक्त हुए थे मगर दुर्भाग्यवश उनकी आंखों में आधुनिकीकरण का जो सपना था, वह पश्चिमीकरण या 'पश्चिम की राह पकड़ा' या 'ऊपर से नीचे की ओर' वाले विकास का प्रतिफल था। दुर्भाग्यवश अधिकतर पश्चिमी, उदारवादी अर्थशास्त्रियों ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का आधार आर्थिक वृद्धि माना है और उसे ही विकास का पर्याय कहा है। उदाहरण के तौर पर डब्ल्यू.डब्ल्यू. रेस्टों ने आर्थिक वृद्धि की पांच अवस्थाओं का जिक्र किया है और चौथी अवस्था 'उड़ान' तथा पांचवीं अवस्था 'परिपक्वता' को महत्वपूर्ण माना है जो अधिकतर विकासशील देशों में नहीं है। मगर 'ऊपर से नीचे की ओर' वाले ऐसे प्रतिमान का यह मानना गलत सिद्ध हुआ है कि पूंजी के विकास, अधिक आर्थिक वृद्धिदर एवं अधिक प्रतिव्यक्ति आय से ही समाज में समृद्धि आती है। वास्तव में, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और विकसित राज्यों में आर्थिक वृद्धि एवं प्रतिव्यक्ति आयदर ऊंची रही है, मगर महिलाओं और बच्चों का स्वास्थ्य, शिक्षा, सशक्तीकरण आदि का स्तर उतना नहीं रहा है जितना केरल का, जहां आर्थिक वृद्धिदर और प्रतिव्यक्ति आय तुलनात्मक दृष्टि से कम है। इस प्रकार स्पष्ट है कि केरल में कम पूंजी का ज्यादा समानतामूलक, लैंगिक, न्यायपरक एवं बालोन्मुखी उपयोग होता है। आर्थिक वृद्धि पर आधारित आधुनिकीकरण को ही भारत में नेहरू मॉडल कहा गया जिसमें बड़े बांधों, बड़ी नहरों, बड़े उद्योगों, बड़े भवनों आदि को 'आधुनिक मंदिर' की संज्ञा दी गई। कालांतर में नीति-निर्धारकों, विशेषज्ञों और जनप्रतिनिधियों की समझ में यह आया कि 'बड़ा सुंदर होता है', 'सभी पश्चिमी चीज़ें सुंदर होती हैं।' मगर ऐसे जुमले जनता के हितों के असली पक्षधर नहीं हैं क्योंकि वे चमक और आकर्षण पैदा कर सकते हैं, प्रगति नहीं; आर्थिक रूप से कुछ समय के लिए लाभदायक हो सकते हैं, मगर स्थायी रूप से नहीं। यह पश्चिमी मॉडल पर्यावरण विरोधी हैं क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों का दोहन ज्यादा मात्रा में, बेपरवाह होकर अंधाधुंध तरीक़े से तथा तात्कालिक लाभ के लिए पश्चिमी लोग करते हैं जिससे अगली मानव पीढ़ी समानता, न्याय एवं टिकाऊपन से वंचित हो रही है। इसके अलावा ऐसी विकास परियोजनाओं में जनता की भागीदारी शून्य है जिसके कारण वे योजनाओं के सूत्रण, निर्माण, कार्यान्वयन, अनुश्रवण और मूल्यांकन में शामिल नहीं होते बल्कि तथाकथित जनप्रतिनिधि और नौकरशाह जनता की इच्छाओं, आवश्यकताओं और आशाओं का ऊपर से सतही आकलन करके ये काम संपन्न करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि योजनाओं का अधिकतर उपयोग दैनिक जीवन में नहीं होता और 'अधिकतम लागत न्यूनतम लाभ' के सिद्धांत के तहत नौकरशाह, इंजीनियर, ठेकेदार, व्यवसायी, आपूर्तिकर्ता, जनप्रतिनिधि आदि इनमें नाज़ायज लाभ कमाते हैं। बढ़ा-चढ़ाकर प्राक्कलन बना करके, गुणवत्ता ख़राब करके, महंगी मशीनें–उपकरण आदि ख़रीद करके, फर्ज़ी मज़दूर-सूची तैयार करके, ज्यादा खुदाई दिखा करके, निर्माण-सामग्रियों का यातायात काफी दूर से (कागज़ में) दिखा करके, परियोजना-स्थल से उपकरण-सामग्री आदि की चोरी करके आदि। उदारवादी पूंजीवादी विकास के प्रतिमान में पूंजी का भूमंडलीकरण तेज़ी से हो रहा है जिसके कारण बड़े-बड़े पूंजीवादी और उनकी बहुराष्ट्रीय कंपनियां पूंजी का निवेश वहां कर रही हैं जहां उन्हें अधिक-से-अधिक सुविधाएं (आधारभूत संरचनाएं, सस्ती दरों पर भूमि का अधिग्रहण, सस्ती दर पर मज़दूर, करों की कम दर आदि) प्राप्त होती है जिससे मुक्त बाज़ार अपने डैने विस्तार से फैला सके। विकासशील देशों की बड़ी आबादी के मद्देनज़र वहां के लोगों को नयी-नयी चीज़ों का शौक पैदा किया जा रहा है और अक्सर बिना ज़रूरत के भी उनकी इच्छाओं को विज्ञापनों के ज़रिये आवश्यकताओं में बदला जा रहा है और अंततः उन्हें अच्छे नागरिक बनने के लिए सबसे पहले उपभोक्ता बनाया जा रहा है। पहले विवेकवाद (डेकार्त) में कहा जाता था– "मैं हूं क्योंकि मैं सोचता हूं।" मगर अब मनुष्य को सोचने वाला प्राणी नहीं, बल्कि देखने वाला, सुनने वाला, ख़रीदने वाला और उपभोग करने वाला बताया जा रहा है जिसका आप्तवचन है : "मैं हूं क्योंकि मैं ख़रीदता हूं।" जो ज्यादा ख़रीदेगा, बार-बार ख़रीदेगा, नाना प्रकार की चीज़ें ख़रीदेगा, उसे व्यवसायी/दुकानदार ज्यादा तरजीह देगा– उसे 'एक ख़रीदो, दूसरा मुफ़्त' का ऑफर मिलेगा, उसे नकद के अतिरिक्त उधार भी मिलेगा

(सामान्य जनों के लिए लिखा रहेगा– 'उधार प्रेम की कैंची है' या 'आज नगद, कल उधार'), उसे मुफ्त में पैकेज़ की सुविधा मिलेगी, फोन पर क्रयादेश मिलने पर उसके घर पर सस्ती चीज़ें बिना अतिरिक्त शुल्क के पहुंचा दी जाएंगी 'होम डिलिवरी' के नाम पर। यह अकारण नहीं है कि अंग्रेज़ी अख़बारों के साथ रोज़ाना होम डिलिवरी (विशेषकर पिज़्ज़ा, हैम्बर्गर, कांटिनेंटल भोजन/फास्ट फूड) की प्रचार-सामग्री मुफ्त में वितरित की जाती है क्योंकि उसे उच्च और उच्च-मध्य वर्ग के पाठक प्रायः पढ़ते हैं और अपनी नयी रुचियां बनाते हैं तथा वे इन चीज़ों को ख़रीदने में सक्षम होते हैं। इस प्रकार आवश्यकता-आधारित उत्पादन की जगह इच्छा-जनित उपभोग को बढ़ावा मिलता है।

उपभोक्तावाद के संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि डिब्बाबंद भोज्य पदार्थ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं क्योंकि उनमें पशुओं के जीन मिले होते हैं, उनमें खाद्य पदार्थों को लंबे समय तक सुरक्षित रखने हेतु नाना प्रकार के रसायन डाले जाते हैं; उनमें कीटनाशक मिले होते हैं, उनमें अखाद्य रंग मिले होते हैं, उन्हें जिन प्लास्टिक बर्तनों में रखा जाता है उनके रसायन उस पदार्थ में मिल जाते हैं। कहने की ज़रूरत नहीं कि ऐसे खाद्य और पेय पदार्थ जब विकासशील देशों में भेजे जाते हैं; तो उनमें स्वास्थ्य और सफाई के मापदंडों का खुल्लम-खुल्ला उल्लंघन होता है। सेंटर फॉर साइंस एंड एन्वायरनमेंट, नयी दिल्ली ने पेप्सी, कोको कोला, थम्सअप, स्प्रिंट आदि ठंडे पेयों की जांच में पाया था कि अमरीका और यूरोप के उपभोक्ताओं के लिए स्वीकार्य अवशिष्ट मात्रा प्रतिशत से काफी ज्यादा मात्रा भारत में आयातित ठंडे पेयों में थी जो स्वास्थ्य के लिए नुकसानदेह है। मजे की बात तो यह है कि जांच के समय तक भारत में ऐसा कोई कानूनी प्रावधान नहीं था जिसके तहत उत्पादक/वितरक के विरुद्ध कार्रवाई की जाती। सो बहुराष्ट्रीय कंपनियां इसका नाज़ायज लाभ उठा रही थीं। इस जांच को जन-संचार माध्यमों ने काफी प्रचारित किया। ज्ञातव्य है कि इन शीतलपेयों की कंपनियों द्वारा भारत के कई हिस्सों में काफी मात्रा में भूजल का दोहन किया जा रहा है जिसके कारण वहां के गांवों का जलस्तर नीचे चला गया है। उदाहरणार्थ, केरल के प्लाचीमाड़ा में कोको कोला संयंत्र के लगने से ग्राम पंचायत क्षेत्र का जलस्तर काफी घट गया जिसके कारण पंचायत ने उस पर रोक लगा दी मगर विधि की विडंबना कि उच्चतर न्यायालय ने उस कारखाने के पक्ष में निर्णय दिया।

यदि कोई बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उत्पादित-निर्यातित उत्पादों की गुणवत्ता के बारे में सवाल उठाता है तो ये कंपनियां उसके पीछे पड़ जाती हैं : कुछ समय के लिए वे भ्रांति फैलाने में सफल भी हो जाती हैं। यह विभिन्न महानगरों में देखा जा सकता है कि बड़े-बड़े फूड चेन, स्टोर, फूड कोर्ट, फूड बाज़ार, बिग बाज़ार धड़ल्ले से खुल रहे हैं जो प्रायः वातानुकूलित होते हैं, जहां सामान महंगे मिलते हैं और जहां बाज़ार की चमक-धमक अपने चरम पर होती है। यद्यपि वहां लाभ ज्यादा होता है, मगर वहां कार्यरत मज़दूर/कर्मचारी प्रायः अस्थायी होते हैं (ठेके पर) और उनका वेतन (मज़दूरी) बहुत कम होता है। वहां आम आदमी अपनी जेब टटोलकर अपने को हीनतर समझकर प्रायः प्रवेश नहीं करता। जैसा कि सर्वविदित है, सह जनसंचार माध्यमों की चकाचौंध का ज़माना है, जिससे बहुत सारे चैनलों पर नियमित रूप से डिब्बाबंद और बोतलबंद खाद्य पदार्थों/पेय जल आदि का प्रचार आ रहा है और दूसरी ओर विदेशी पिज़्ज़ा, हैम्बर्गर, पैटिज, पुडिंग, कढ़ी आदि के नुस्खे समझाए जा रहे हैं जिससे टीवी देखने वाली महिलाओं की रुचि बदले क्योंकि प्रायः वे सबसे ज्यादा समय तक और नियमित तरीक़े से टीवी देखती हैं।

मगर इसके कई अप्रत्याशित दुष्परिणाम भी सामने आते हैं। मसलन, डिब्बाबंद, बोतलबंद खाद्य-पदार्थों/पेयों के उपयोग से लड़कियों में किशोरावस्था समय से पहले ही इसके लिए प्लास्टिक की बोतलों का उपयोग भी जिम्मेदार है और उसके रसायनों के परिणामस्वरूप मोटापा भी तेजी से बढ़ रहा है। प्लास्टिक की बोतलों में पाया जाने वाला बिस्फेनोल ए तथा फथालेट्स नामक रसायन में एस्ट्रोजेन एवं अन्य प्रजननीय हार्मोनों को प्रभावित करने की क्षमता होती है। इसके अलावा प्लास्टिक बोतलों के रसायन बच्चे की ऊंचाई कम करने की क्षमता भी रखते हैं– आजकल सामान्यतः बच्चों की ऊंचाई, विशेषकर लड़कियों की, कम हो रही है। डेनमार्क में 1991-93 में 1,100 लड़कियों और 2006 में 900 लड़कियों पर किए गए शोध में नकारात्मक परिणाम दिखते हैं। फिर प्रसंस्करित भोज्य पदार्थ देर से पचते हैं। दिनांक 4/6/2009 के *डेली टेलिग्राफ* नामक दैनिक में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार ब्रिटिश शोधार्थियों (इंस्टीट्यूट ऑफ फूड रिसर्च एंड नाटिंघम यूनिवर्सिटी) ने पाया है कि कई प्रसंस्करित भोज्य पदार्थ (यथा- ब्रेड, पेस्ट्री, सलाद, फल) पेट में एसिड के मिलने से पच जाते हैं मगर कुछ जल्दी नहीं पचते। सो यदि कुछ रासायनिक तत्व उनमें मिला दिए जाएं, तो वे काफी देर तक पेट में बने रहेंगे और भूख का अहसास नहीं होगा। भूख मिटाने का कैसा अजीबोग़रीब तरीका है यह! यह विडंबना ही है कि भारत में गोदामों में अनाज सड़ रहे हैं जबकि ग़रीब लोग भूखों मर रहे हैं क्योंकि उनमे अनाज क्रय करने की क्षमता नहीं है। कुछ राज्यों (केरल, तमिलनाडु) को छोड़कर विभिन्न राज्यों में जनवितरण प्रणाली की दुकानें भ्रष्टाचार और अनियमितताओं की शिकार हैं– बहुतेरे ग़रीबों के पास लालकार्ड नहीं हैं, अथवा राशनकार्ड होने पर भी उन्हें उचित मूल्य पर सामान नहीं मिल रहे हैं।

जहां तक पीने के पानी का सवाल है, इसमें दो मुद्दे अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। पहला, पानी की समस्या गांवों-शहरों-महानगरों में तेज़ी से बढ़ रही है क्योंकि एक ओर बरसात कम हो रही है, तो दूसरी ओर वर्षा के जल का संरक्षण समुचित तरीक़े से नहीं हो रहा है जिसके कारण सिंचाई के लिए, उद्योगों के लिए और पीने के लिए पानी की किल्लत हो गई है। यह कहना अनावश्यक नहीं है कि समाज के दबंगों तथा सरकारी तंत्र द्वारा सदियों से जलाशयों का अतिक्रमण या रूपांतरण किया गया है। उदाहरण के तौर पर, दिल्ली में भवन-निर्माण के नाम पर कई अधिकारियों, इंजीनियरों, ठेकेदारों, बिल्डरों, नेताओं आदि ने कई झीलों तथा तालाबों का अस्तित्व ही मिटा दिया है। ब्रिटिश शासन (बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में) में दिल्ली में आठ सौ जलाशय थे और 1970 के दशक तक वे घटकर आधे हो गए और अब मात्र उंगली पर गिनने योग्य बच गए हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि फरवरी 2009 में दिल्ली हाईकोर्ट ने आदेश दिया था कि मुख्य सचिव दिल्ली की अध्यक्षता में गठित जलाशय समिति जांच कर और सभी संबंधित संस्थाओं को निर्देश दे कि वे दिल्ली के 629 जलाशयों का जीर्णोद्धार करें (यह संख्या स्वयं दिल्ली सरकार ने न्यायालय

में स्वीकार की थी)। राजस्थान के जैसलमेर जैसे सूखाग्रस्त इलाके मे गढ़सी राजा ने 800 वर्ष पहले गढ़सी सर बनवाया था जिसमें संभवत: उन्होंने खुद भी प्रजा के साथ-साथ काम किया था। मगर पिछले कुछ वर्षों में उस तालाब के जलग्रहण क्षेत्र में पर्यटकों की सुविधा के नाम पर एयरपोर्ट बना दिया गया और एक हाउसिंग कॉलोनी बसा दी गई। व्यवस्था ने एक अनुभव-सिद्ध देशज ज्ञान पद्धति के आधार पर बने जलस्रोत का समूल नष्ट कर दिया। कमोवेश यही स्थिति भारत के अन्य प्रदेशों में है। पिछले साठ-पैंसठ वर्षों में गांवों के तालाबों को दबंगों ने अपने निजी कब्ज़े में ले लिया है जिसके कारण न तो चरागाह बचे हैं, न खेल-कूद के मैदान, न जंगल-बगीचे बचे हैं जो सामुदायिक विरासत के प्रतीक रहे हैं। एक तरह से साझी-सामुदायिक विरासत रसातल में चली गई है क्योंकि हमारी नीतियों ने गांवों और कृषि तथा उससे जुड़े संसाधनों (तालाबों) की उपेक्षा की।

देशज ज्ञान-पद्धति का एक और उदाहरण है बिहार में आहर (जलाशय) एवं पईन (नाली) का पुराना अस्तित्व। यह समयसिद्ध, अनुभवसिद्ध पर्यावरण-हितैषी सिंचाई-व्यवस्था थी, मगर समय-समय पर इसकी उड़ाही न होने और मरम्मत न होने तथा विभिन्न प्रकार के अतिक्रमणों के कारण उनका अस्तित्व ख़तरे में है।

मध्य प्रदेश में नर्मदा नदी पर सैकड़ों बड़े, मध्यम और छोटे बांध पिछले तीन दशकों से बन रहे हैं जिसके कारण एक लाख से अधिक लोग विस्थापित हो चुके हैं। इंदिरा सागर तथा सरदार सरोवर बांध योजनाओं में पर्यावरण विशेषज्ञों की समिति (अध्यक्ष देवेंद्र पांडे, भारत वन सर्वेक्षण के निदेशक) ने अंतरिम रपट (फरवरी 2009) में कहा है कि अब और ऊंचा निर्माण कार्य नहीं होना चाहिए। इसके अनुसार सरदार सरोवर बांध की ऊंचाई पुल और पिलर्स आदि सहित 122 मीटर ही रहे। इसके अनुसार मध्य प्रदेश, गुजरात और महाराष्ट्र की सरकारों ने जलग्रहण क्षेत्र क्षेत्रपूर्तिकारी वृक्षारोपण, तराई प्रभाव, कमांड क्षेत्र का विकास, पुरातात्विक एवं स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों आदि पक्षों का अनुपालन नहीं किया है। इसके अलावा, नर्मदा बचाओ आंदोलन के इस दावे में भी तथ्य है कि सभी विस्थापितों का समुचित पुनर्वास अभी तक नहीं किया गया है। दूसरी ओर इन विस्थापितों के जीविका-स्रोत नष्ट हो चुके हैं। हरसूद कस्बा पूरी तरह से जलप्लावित हो गया क्योंकि यह घोषणा की गई कि जो जितनी जल्दी अपना मकान तोड़ेगा, उसे उतनी जल्दी और उतना ज्यादा मुआवज़ा मिलेगा। जिस घर को बनाने में इंसान की पूरी ज़िंदगी लग जाती है, उसे तोड़ने में वह अपनी ज़िंदगी तोड़ लेता है। चिपको आंदोलन वनों की थोक वाणिज्यिक कटाई के विरुद्ध शुरू हुआ था और तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के हस्तक्षेप से आंदोलन अपने उद्देश्य में सफल हो गया। उसी तर्ज़ पर दक्षिण भारत में क़रीब 1,600 किमी में फैले पश्चिमी घाट के वनों की कटाई रोकने के लिए पांडुरंग हेगड़े के नेतृत्व में अप्पिको आंदोलन चल रहा है जो जीविका के मुद्दे को पर्यावरणीय सरोकारों से जोड़ता है। मगर इस आंदोलन के बावजूद पश्चिमी घाट के इलाके में विकास के नाम पर कंक्रीट के जंगलों की भरमार हो गई है जिससे पर्यावरण कुप्रभावित हो रहा है। विभिन्न बांधों, बिजली परियोजनाओं, उद्योगों, विशेष आर्थिक क्षेत्रों आदि के लिए किसानों की ज़मीन उनकी इच्छा के विरुद्ध 'सार्वजनिक उद्देश्य' के नाम पर ली गई है और उन्हें बाज़ार दर पर क़ीमत नहीं चुकाई जा रही है तथा उन्हें वैकल्पिक स्थायी जीविका का साधन भी नहीं दिया जा रहा है। विरोध करने में उन्हें अपनी जान गंवानी पड़ रही है जैसे पश्चिमी बंगाल के सिंगूर और नंदीग्राम में, उत्तर प्रदेश के दादरी में।

यह भी उल्लेखनीय है कि विश्व की 925 बड़ी नदियों का कुल बहाव (1948-2004 के दौरान) घट रहा है। इनमें से कई बड़ी नदियां यथा– भारत में गंगा, उत्तरी चीन में पीली नदी, पश्चिमी अफ्रीका में नाइजर तथा दक्षिण-पश्चिमी अमरीका में कोलोरैडो काफी बड़ी आबादी की सेवा करती हैं। भारत में नदियां जीवन के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयामों की भूमिका बखूबी निभाती रही हैं मगर हमने उन्हें इस हद तक प्रदूषित कर दिया है (कचरा, गंदा पानी, पेशाब, मल, अपशिष्ट आदि फेंककर) कि उनका जल पीने योग्य या सिंचाई योग्य भी नहीं रह गया है। दिल्ली की यमुना रासायनिक अपशिष्टों के बोझ से गतिहीन हो गई है, उसके पेट में कॉमनवेल्थ गेम्स के लिए ऊंची-ऊंची इमारतें बन गई हैं और सूचना प्रौद्योगिकी के नाम पर 'कॉलसेंटर' खुल गए हैं। हिंद महासागर में प्रतिवर्ष बहाव में 30 प्रतिशत या 140 क्यूबिक किलोमीटर की कमी हो रही है। हिमालय के ग्लेशियर तेज़ी से पिघल रहे हैं जिसके कारण गंगा जैसी कई नदियां अगले बीस-तीस वर्षों में सूख सकती है। गंगा एक्शन प्लान के नतीज़े संतोषजनक नहीं हैं। यूं राष्ट्रीय गंगा नदी बेसिन प्राधिकरण की स्थापना स्वागतयोग्य है जिसका लक्ष्य है कि 2020 तक गंगा में बिना शोधन के नगरनिगमों/नगरपालिकाओं का कचरा/गंदा पानी या औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ नहीं गिराया जाए। यह कैसी विडंबना है कि जिस गंगा जल को हम पवित्र मानते हैं तथा प्रत्येक धार्मिक/सामाजिक कार्य में उससे अपने को पवित्र करते हैं, उसी को नाना प्रकार से गंदा करते हैं। अपवाद स्वरूप आर्कटिक महासागर में बर्फ़ के पिघलने के कारण नदियों का महत्व बढ़ रहा है। फिर भी यह दुखद है कि हम वर्षा के जल का समुचित संरक्षण नहीं कर रहे हैं। भारत में वर्षा जल का 20 प्रतिशत ही संरक्षित हो पाता है जबकि इज़रायल जैसा छोटा-सा देश वर्षा जल का 80 प्रतिशत संरक्षित रखता है। जो इज़रायल रेगिस्तान था, वह सिंचाई व्यवस्था के कारण अब पूर्णत: हरा-भरा है और दूसरी ओर भारत का हरा-भरा क्षेत्र रेगिस्तान बन रहा है। जिस हरित क्रांति पर प्रत्येक भारतीय इतराता रहा है, उसके दुष्परिणाम अब हमारे सामने हैं : मिट्टी का लवणीकरण, जलस्तर का घटना, रेगिस्तानीकरण, कीटों का प्रकोप बढ़ना, नये उन्नत बीजों के साथ नये खरपतवारों की भरमार होना। सो हरित क्रांति न तो हरी रह गई है, न परिवर्तनकारी।

आजकल उद्योग-जगत में 'हरा' करने का प्रचलन बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया जा रहा है– चाहे वह ऊर्जा संरक्षण का सवाल हो, या हरित ईंधन (सीएनजी) का या अपशिष्ट बने इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों के पुन: चक्रण का। उदाहरण के तौर पर, नोकिया इंडिया ने बंगलुरु, दिल्ली, गुड़गांव, लुधियाना आदि में 1,300 पुन: चक्रण कूड़ादान स्थापित किए हैं (जनवरी से मई, 2009 तक)। मगर जितनी संख्या में मोबाइल उपकरण अपशिष्ट बढ़ रहे हैं, उसकी तुलना में यह नगण्य है। वास्तव में, धातुओं का खनन, भूमि का अधिग्रहण, जल का दोहन, ऊर्जा की खपत, बड़े बांध निर्माण, भवन निर्माण आदि में प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण निंदनीय है– यह विकास के नाम पर

विनाश है। महानगरों में वाहनों का प्रदूषण भी तेज़ी से बढ़ रहा है। निजी गाड़ियों की भरमार से प्रदूषण के साथ-साथ तापमान में भी वृद्धि हो रही है। इस मामलें में दिल्ली की स्थिति बदतर है जो दुनिया का तीसरा सबसे ज्यादा प्रदूषित शहर है। विदेशों में यूरो I, II, III की तरह भारत I, II, III की श्रेणी गाड़ियों के स्वच्छ ईंधन (प्रदूषणरहित) के आधार पर बनाई गई है, मगर अधिक और अतिरिक्त वाहन का लालच हमें अंधे कुएं में ढकेल रहा है।

यदि हम पीने के पानी का सवाल गहराई से देखें, तो पाते हैं कि पानी की गुणवत्ता, ऊंची क़ीमत तथा उपभोक्ता की आर्थिक आय में ज़रूरी संबंध है। सुदूर गांवों में ग़रीब लोग तालाब, झील, नदी आदि का पानी पीने, नहाने और खाना बनाने के काम में लाते हैं जिनमें जानवर भी पानी पीते हैं और नहलाए जाते हैं, इनमें शवों को प्रवाहित किया जाता है अथवा जलाकर उनकी राख प्रवाहित की जाती है। दूसरे, कुओं, हैंडपंपों आदि का उपयोग गांवों के निम्न, मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग के लोग करते हैं (यदि बेहतर साधन, जैसे बिजली से भूजल निकालना संभव होता है, तो उच्च वर्ग के लोग ऐसा करते हैं) तीसरे, शहरों में और कुछ कस्बों और विकसित गांवों में सार्वजनिक रूप से जलापूर्ति की जाती है और सार्वजनिक संस्था द्वारा उसका आंशिक शोधन किया जाता है। चौथे, अपेक्षाकृत समृद्ध लोग एक्वागार्ड से या आरओ तकनीकी से साफ़ पानी या पूर्ण शोधित पानी ख़रीदकर पीते हैं। पांचवें, उच्च वर्ग (पूंजीपति, फिल्मी सितारे, व्यापारी, ठेकेदार, व्यवसायी) के लोग रोज़ाना बोतलबंद (मिनरल वाटर) पानी पीते हैं, उससे खाना बनाते हैं। यह सामाजिक स्तरीकरण का सूचक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि आम आदमी स्वच्छ जल पाने के अधिकार से वंचित है। वह बाज़ार में मिल रहे क़ीमती बोतलबंद पानी को नहीं ख़रीद सकता। क़रीब बारह रुपये प्रतिलीटर की दर से प्रतिदिन एक औसत परिवार (5) में (15) लीटर की ज़रूरत होगी अर्थात एक सौ अस्सी रुपये सिर्फ़ पानी ख़रीदने में ख़र्च हो जाएंगे जबकि उसकी एक दिन की मज़दूरी (गांव में) साठ से सत्तर रुपये होती है। पानी का संकट इस हद तक बढ़ रहा है कि आशंका व्यक्त की जाने लगी है कि तीसरा विश्वयुद्ध पानी के बाबत होगा।

अब तक दूध, घी, तेल, मसालों आदि में मिलावट प्रचलित रही है मगर अब हरी सब्ज़ियों में भी मिलावट हो रही है। पहली, खेतों में किसानों द्वारा सीताफल, लौकी, खरबूजा, तोरई, टिंडा आदि में ऑक्सीटोसिन की सुई लगाई जा रही है जिससे उनका आकार बड़ा हो जाए। यद्यपि इस दवा की बिक्री पर सरकार द्वारा रोक लगाई गई है मगर यह पचास पैसे की दर से दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, कानपुर, नोएडा, गुड़गांव आदि जगहों में धड़ल्ले से मिल रही है और इसका इस्तेमाल सब्ज़ियों के साथ-साथ गाय-भैंसों में (दूध बढ़ाने के लिए) किया जा रहा है। इसके कुप्रभाव भयंकर हैं– पुरुषों में नपुंसकता, गाय-भैंसों में बांझपन, स्त्रियों में छाती का कैंसर, गर्भपात, लीवर और गुर्दे की ख़राबी आदि। दूसरी, फुटकर सब्ज़ी-फल विक्रेतागण फलों-सब्ज़ियों को रासायनिक रंगों से रंगते हैं। ये रंग भी काफी नुक़सानदेह होते हैं। इस प्रकार विशेषत: शाकाहारी व्यक्तियों को ऐसे फलों-सब्ज़ियों के ज़हर से बचने की आवश्यकता है तथा निगरानी तंत्र को सुदृढ़ करने की भी आवश्यकता है। यहां भी अधिक उत्पादन गुणवत्ता और स्वास्थ्य की क़ीमत पर हो रहा है अर्थात ऐसा परिमाणात्मक और आर्थिक विकास पर्यावरण, स्वास्थ्य, सफाई आदि का विरोधी है जिसका सतत प्रतिरोध जनसाधारण में जागृति पैदा करके सामूहिक रूप से किया जाना चाहिए।

यह कैसी विडंबना है कि भारत में 2007-08 में आर्थिक वृद्धिदर नौ प्रतिशत रही है मगर ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वालों का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। योजना आयोग ने ग़रीबों की संख्या 27 प्रतिशत आंकी है जबकि भारत सरकार द्वारा नियुक्त अर्जुनसेन गुप्त आयोग के अनुसार, भारत के 77 प्रतिशत लोग बीस रुपये से कम की रोज़ाना आय पर किसी तरह गुज़ारा करते हैं। ज़ाहिर है कि महज बीस रुपये में ज़रूरी चीज़ें (भोजन, वस्त्र, मकान, शिक्षा एवं स्वास्थ्य) पूरी नहीं की जा सकतीं। यूं अब तो सुरेश तेंदुलकर समिति ने अपनी रपट में स्पष्टत: लिखा है कि भारत में ग़रीबों की संख्या (2004-05) 37.5 प्रतिशत है जबकि विश्व बैंक के अनुसार 1.25 डॉलर प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन के आधार पर भारत में वर्ष 2005 में 41.6 प्रतिशत लोग ग़रीबी रेखा के नीचे थे। एशियाई विकास बैंक के अनुसार 1.35 डॉलर प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन के आधार पर भारत में 62.2 प्रतिशत ग़रीब रहते हैं। प्रो. उत्सा पटनायक और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त खाद्य आयुक्त डॉ. एन.सी. सक्सेना ने यह खुलासा किया है कि ग़रीबी रेखा की परिभाषा इस दृष्टिकोण से बदली जाती रही है कि वास्तविक ग़रीबों को छुपाया जा सके। इसीलिए ग़रीबी रेखा के निर्धारण में खाद्य पदार्थों के साथ-साथ अन्य ज़रूरतों यथा– कपड़ा, आवास, शिक्षा एवं स्वास्थ्य को नकार दिया जाता है। इतना ही नहीं, आजकल शहरी क्षेत्र के लिए ज़रूरी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 2,100 कैलारी और ग्रामीण क्षेत्र के लिए ज़रूरी 2,400 कैलोरी की गणना ग़रीबी रेखा का निर्धारण करते समय नहीं की जाती। वास्तव में, वर्ष 2004-05 में ग़रीबी रेखा के निर्धारण हेतु महज 1,820 कैलोरी को मानक बनाया गया। कहने का आशय है कि ग़रीबी रेखा को रबड़ की तरह छोटा-बड़ा किया जाता है जिससे मुख्यधारा के अर्थशास्त्री यह सिद्ध करने में कामयाब हो सकें कि उदारीकरण के परिणामस्वरूप ग़रीबी घटी है और समृद्धि में वृद्धि हुई है। मगर बढ़ती बेरोज़गारी, कुपोषण, विस्थापन, विषमता, निरक्षरता, मृत्युदर, बीमारी आदि ग्रामीण भारत की जो तस्वीर पेश करते हैं, वह न तो 'खुशनुमा अहसास' का बोध कराती है और न 'अतुल्य भारत' का। प्रो. उत्सा पटनायक ने बढ़ती भुखमरी के कारण भारत को 'भूख का गणराज्य' कहा है। इसके अलावा यह भी चिंताजनक है कि मुख्यधारा के अधिकतर अर्थशास्त्री यह कहते हुए नहीं थकते कि मुद्रास्फीति की दर अत्यंत कम है मगर दूसरी ओर खाद्य पदार्थों की महंगाई ग़रीबों के साथ-साथ मध्य वर्ग की भी कमर तोड़ रही है क्योंकि सब्ज़ी, दाल, आटा, चावल, मसाले आदि के दाम हर तीन महीने में दुगुने हो रहे हैं जिससे परिवार का बजट गड़बड़ा जा रहा है। ग़रीबों के लिए दाल प्रोटीन का एकमात्र स्रोत रही है मगर उसका दाम एक सौ रुपये प्रतिकिलो तक हो गया है जो आम आदमी के सामर्थ्य से परे है। फिर भारत में दाल की उपलब्धता वर्ष 1961 में 61 ग्राम से घटकर वर्ष 2007 में 35 ग्राम प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन हो गई। अर्थात हमारी खाद्य सुरक्षा ख़तरे में पड़ गई है।

विकास का उदारवादी पूंजीवादी दृष्टिकोण समाज एवं पर्यावरण के लिए घातक है। हमें टिकाऊ विकास, पारिस्थितिकी हितैषी विकास, सहभागी विकास, न्याप्रद और कम ख़र्चीला विकास चाहिए। मगर दुर्भाग्यवश हमारी शिक्षा

व्यवस्था उत्पादक एवं हुनर वाली नहीं है, इसमें 'श्रम की गरिमा' निहित नहीं है बल्कि मानसिक और शारीरिक कार्यों को फूहड़ तरीक़े से दिखलाया जाता है तथा मानसिक श्रम को ही सर्वत्र तरज़ीह दी जाती है। शहरी वातावरण में पले-बढ़े और शिक्षा पाए चिकित्सकों के भीतर मानव-सेवा का भाव नहीं रह गया है। शिक्षक, शिक्षण को या तो खानापूर्ति समझ रहा है अथवा ट्यूशन-कोचिंग में विद्यार्थियों को घुट्टी पिलाकर उनका खून चूस रहा है। शिक्षा का वाणिज्यीकरण इस क़दर फैला है कि निजी संस्थानों में एमबीबीएस के प्रवेश के लिए पचास लाख रुपये तक और इंजीनियरिंग, प्रबंधन में पांच से दस लाख रुपये तक डोनेशन लिया जा रहा है। कई निजी तकनीकी संस्थानों ने बिना समुचित आधारभूत सुविधाओं और शिक्षकों की योग्यता के चमक-दमक वाली दुकानें खोल रखी हैं जिनमें मान्यता देने वाली संस्थाओं की मिलीभगत रही है और कुछ के विरुद्ध आपराधिक मुकदमें भी दर्ज़ हुए हैं। अधिकतर सरकारी विद्यालय, महाविद्यालय, राज्यों के विश्वविद्यालय आदि पैसे के अभाव तथा सही नेतृत्व के अभाव (निजी को जोड़कर) में खंडहर बन गए हैं जिससे उनकी गुणवत्ता प्रभावित हुई है और दूसरी ओर वे राजनीति के अखाड़े बन गए हैं। सौ करोड़ से अधिक आबादी वाले भारत में तीन सौ से अधिक विश्वविद्यालय हैं मगर विश्व के सर्वोत्तम एक सौ विश्वविद्यालयों में उनकी गणना नहीं होती है जबकि उस सूची में कई विकासशील देशों के कई विश्वविद्यालय शामिल हैं।

मगर इतना तो मानना ही होगा कि हमारे देश में लोकतंत्र की जड़ें जम गई हैं और कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो भारतीय लोकतंत्र का रिकॉर्ड विश्व में कमोवेश संतोषजनक है। फिर भी लोकतंत्र की आत्मास्वरूप जनभागीदारी विकास के सभी कार्यक्रमों में सभी चरणों में नहीं है। यूं मनरेगा (महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना) ग़रीबों को अकुशल रोज़गार दे रही है और 'सामाजिक संकेक्षण' के ज़रिये इसमें पारदर्शिता आ रही है। ज़रूरत है ऐसी पारदर्शिता सभी कार्यक्रमों में लाने की। इसी प्रकार सूचना के अधिकार अधिनियम के कारण लोगों में काफी चेतना फैली है तथा शासन-प्रशासन में पारदर्शिता बढ़ रही है अर्थात एक तरह से लोगों का सचेतनीकरण हो रहा है जो 'वास्तविक सामाजिक विकास' का एक प्रमुख तत्व है। ज़रूरत है जनता में आत्मनिर्भरता बढ़ाने की और सशक्तीकरण करने की। यह तभी संभव होगा जब शासन-प्रशासन स्थानीय जनता पर भरोसा करेगा और उनकी भागीदारी सुनिश्चित होगी। उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के द्वारा, विश्व बैंक द्वारा प्रचारित आर्थिक वृद्धि के प्रतिमान के बरक्स, 'मानव विकास' की अवधारणा पेश की गई (जिसमें प्रो. महबूब-उल-हक एवं प्रो. अमर्त्य सेन की भूमिका महत्वपूर्ण है) जिसके तीन तत्व हैं : आय, साक्षरता व शिक्षा (विद्यालयों में नामांकन) एवं दीर्घ आयु। प्रकार, इस मानव विकास सूचकांक में आर्थिक और सामाजिक दोनों संकेतकों को महत्व देकर इसे व्यापक बनाया गया है। प्रो. अमर्त्य सेन ने विकास को 'स्वतंत्रता' के रूप में परिभाषित किया है। मगर इस आधार पर भारत की स्थिति संतोषजनक नहीं है। (विश्व में 168वां स्थान)। भारत में औसत आयु मात्र 65 वर्ष है जबकि विकसित देशों में 80 से 90 वर्ष है। इसी प्रकार भारत में साक्षरता 65 प्रतिशत है जबकि विकसित देशों में 90 प्रतिशत से अधिक है (और भारत का केरल प्रदेश इस मामले में कई विकसित देशों के समकक्ष है)। इससे एक कदम आगे बढ़कर सामाजिक विकास सूचकांक में इक्कीस संकेतकों को शामिल किया गया है जिसमें सामाजिक, आर्थिक, जनसांख्यिकीय, शैक्षिक, स्वास्थ्य संबंधी संकेतक शामिल हैं। यह सूचकांक सबसे ज्यादा विस्तृत है तथा विकास के सभी आयामों को प्रकट करता है। मगर दुर्भाग्यवश भारत की स्थिति इस सूचकांक पर भी असंतोषजनक है। ज़रूरत है कि योजना आयोग में अर्थशास्त्रियों के साथ-साथ समाजशास्त्री, राजनीतिविज्ञानी, जनसांख्यिकीविद, शिक्षाशास्त्री, पर्यावरणविद्, स्वास्थ्य विशेषज्ञ आदि भी शामिल किए जाएं जो विकास का सही मूल्यांकन गहराई और विस्तार के परिप्रेक्ष्य में समुचित रूप से कर सकेंगे। भारतीय गणतंत्र के साठ वर्ष पूरे होने पर सभी भारतीयों को यह संकल्प लेने की ज़रूरत है कि वह यह सोचे कि उसने देश के लिए क्या किया है तथा वक्त का तकाज़ा है कि विकास के नये प्रतिमान उठाए जाएं जो लोकोन्मुखी, रोज़गारपरक, जनसहभागी, समतामूलक एवं पर्यावरण-हितैषी हों। हमें हरित क्रांति से आगे जाकर सतत हरित क्रांति लाने की महती ज़रूरत है। ❑

(लेखक भारतीय प्रशासनिक सेवा से संबद्ध हैं। लेख में व्यक्त विचार लेखक के निजी हैं।
ई-मेल : sush84br@yahoo.com)

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने इसके लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल exeed.yojana@gmail.com अथवा yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

– वरिष्ठ संपादक

सफल प्रयोगों के छह दशक

● उमेश चतुर्वेदी

हर साल 15 अगस्त और 26 जनवरी का दिन हमारी आज़ादी और हमारे गणतांत्रिक व्यवस्था के गौरवपूर्ण इतिहास का याद दिलाने ही नहीं आता, बल्कि अपने देश के सिंहावलोकन का भी ज़रिया बनता है। इस मौक़े पर जब भी हम पीछे मुड़कर आज़ाद भारत के इतिहास को देखते हैं तो हमें अभाव से शुरू हुई यात्रा का विकास पथ जहां दिखता है वहीं अपनी असफलताएं भी नज़र आती हैं। जब हम पड़ोसी देशों, खासकर चीन से अपनी आज़ाद शासन व्यवस्था की यात्रा की तुलना कर देखते हैं तो हमें अपनी असफलताएं ज्यादा बड़ी नज़र आने लगती हैं। लेकिन हमें पता है कि भौतिकता की राह पर आज़ादी के 62 सालों में भारतीय गणराज्य ने कितनी गहन और बड़ी यात्रा पूरी की है। वरिष्ठ समाजशास्त्री पूरन चंद जोशी इसे सफल प्रयोगों के छह दशक के रूप में याद करते हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य और सबको ज़रूरी सुविधाएं मुहैया कराने में भले ही हम वह दूरी तय नहीं कर पाए हैं, जिसकी उम्मीद में असंख्य नौजवानों ने अपना लहू बहाया था, अनेक महिलाओं ने घर की चारदीवारी से निकल पुलिस की लाठियां झेली थीं। स्वतंत्र भारत के औद्योगिक प्रतिष्ठानों को देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने आज़ाद भारत के तीर्थस्थलों के रूप में याद किया था। भिलाई, राउरकेला और भोपाल के स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया और भारत हेवी इलेक्ट्रिकल इकाइयां हों या फिर भाखड़ा नंगल बांध, उन्होंने स्वतंत्र भारत में आर्थिक निर्भरता और रोज़गार बढ़ाने में भारी योगदान किया है। उसी राह पर चलते हुए एक दौर ऐसा भी आया कि कभी विलासिता का प्रतीक रही घरेलू रसोई गैस, टेलीफोन और टेलीविजन आज ज्यादातर नागरिक की आम ज़रूरत बन गई है। इन्हें आज़ाद भारत के सफल प्रयोगों के तौर पर पूरन चंद्र जोशी याद करते हैं तो कोई बुराई भी नहीं है। अभी ज्यादा दिन नहीं बीते हैं, जब भारत में बेसिक टेलीफोन लगवाना बड़ी बात माना जाता था। 1990-2000 तक देश के अन्य इलाकों की कौन कहे, देश की राजधानी दिल्ली में भी टेलीफोन कनेक्शन पाना टेढ़ी खीर माना जाता था। लेकिन आज तो आलम यह है कि बेसिक फोन की कौन कहे, वायरलेस आधारित बेसिक फ़ोन और मोबाइल फोन कनेक्शन देने के लिए सेवा प्रदाता तत्काल उपलब्ध हैं। दिल्ली-मुंबई या चेन्नई की कौन कहे, बलिया के बघांव और मेदिनीपुर के सिंगूर से लेकर कच्छ के रापर तक करोड़ों लोगों की मुट्ठी में मोबाइल फोन के ज़रिये पूरी दुनिया समा गई है। इस सदी की शुरुआत में मोबाइल फोन विलासिता का पर्याय माना जाता था। भारत संचार निगम लिमिटेड की मोबाइल सेवा का उद्घाटन करते वक्त 20 अगस्त, 2002 को लखनऊ में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने इसे पंडोरा बॉक्स कहा था। उन्होंने इस सेवा की शुरुआत पर कहा था कि शायद ही किसी ने सोचा होगा कि यह पंडोरा बॉक्स एक दिन मुट्ठी में समा जाएगा। कहना ना होगा कि इस जादुई बॉक्स का जादू इस क़दर भारतीयों के सिर चढ़ कर बोल रहा है कि दुनियाभर की टेलीफोन सेवा देने वाली कंपनियों का लार भारतीय बाज़ार को देखकर टपक रहा है। पिछले साल सितंबर माह के अंत तक देश में टेलीफोन ग्राहकों का आंकड़ा 50.903 करोड़ को पार कर गया। दूरसंचार नियामक ट्राई ने वर्ष 2010 के अंत तक 50 करोड़ टेलीफोन ग्राहकों का लक्ष्य रखा था, लेकिन यह लक्ष्य सितंबर 2009 में ही पूरा हो गया। आज देश में फोन घनत्व 43.50 प्रतिशत हो गया है। देश की आबादी करीब 1.20 अरब है। देश में मोबाइल फोनधारकों की संख्या 40.31 करोड़ पर पहुंच गई है। सिर्फ़ अगस्त 2009 में ही मोबाइल ऑपरेटरों ने 1.51 करोड़ नये ग्राहक जोड़े थे। मोबाइल फोन बाज़ार के रूप में भारत दुनिया में सिर्फ़ चीन से पीछे है। चीन में मोबाइल फोनधारकों की संख्या 60 करोड़ है। भारत दुनिया में सबसे तेज़ी से बढ़ता मोबाइल फोन बाज़ार है। भारती एयरटेल, वोडाफोन, एस्सार तथा टाटा टेलीसर्विसेज़ जैसी मोबाइल कंपनियां ग्राहकों को लुभाने के लिए तरह-तरह की पेशकश कर रही हैं। भारत में कॉल दरें निचले स्तर पर पहुंच चुकी हैं। यही वजह है कि यहां मोबाइल फोनधारकों की संख्या तेज़ी से बढ़ती जा रही है। विश्लेषकों का कहना है कि ऑपरेटरों द्वारा हाल में जो प्रति सेकेंड की कॉल दर की पेशकश की गई है उससे ग्राहकों की संख्या में और तेज़ी से इज़ाफ़ा होगा। मोबाइल फोन की यह विकास यात्रा उन सफल प्रयोगों की बानगी पेश कर रही है।

यह सच है कि भारत में शिक्षा का आंकड़ा दुनिया के विकसित देशों की तुलना में कमज़ोर है। लेकिन जब हम अपने पिछले रिकॉर्ड को देखते हैं तो पता चलता है कि हमने इस क्षेत्र में कितनी दूरी तय की है। आज़ादी के वक़्त हमारी साक्षरतादर सिर्फ़ 14 फीसदी थी। लेकिन आज यह आंकड़ा तक़रीबन पांच गुना हो गया है। वर्ष 2001 में हुई जनगणना के मुताबिक तक़रीबन 64.84 फीसदी लोग साक्षर थे। इस आंकड़े के मुताबिक तक़रीबन 75.26 फीसदी पुरुष साक्षर थे, जबकि महिला साक्षरता दर सिर्फ़ 53.63 फीसदी थी। हालांकि इसी काल में केरल जैसे राज्यों ने नब्बे फीसदी से ज्यादा नागरिकों को साक्षर बनाने के संकल्प को पूरा करके शत-प्रतिशत साक्षरता का लक्ष्य हासिल कर लिया। माना जा रहा है कि अब तक लगभग 70 फीसदी लोग साक्षर हो चुके हैं। जब हम यह कहते हैं तो इसका मतलब यह भी है कि प्राय: 30 फीसदी लोग अब भी निरक्षर हैं। वास्तविक संख्या के आंकड़ों पर इसे परखें तो इसका अभिप्राय यह है कि क़रीब 36 करोड़ लोग अब भी निरक्षर हैं। इतने निरक्षरों की संख्या ही हमारी चिंता और हमारी शिक्षा व्यवस्था पर सवाल उठाने का ज़रिया बन जाती है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज़ादी के दौरान जहां हमारे देश में तीन में से सिर्फ़ एक बच्चा स्कूल जा पाता था, वहां आज क़रीब अस्सी फीसदी बच्चे स्कूल जा रहे हैं। चौदह साल तक के बच्चों के लिए शिक्षा के अधिकार को मौलिक अधिकार में शामिल किया जा चुका है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के वर्ष 2002 के आंकड़ों के मुताबिक, स्कूलों में पढ़ रहे बच्चों की संख्या 20 करोड़ 30 लाख से ज्यादा थी। भारत में शिक्षा को आज़ादी के बाद से कितनी अहमियत दी जा रही है, इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि सरकार ने जीडीपी का छह फीसदी शिक्षा के मद में ही ख़र्च करने का लक्ष्य रखा है जिसे 11वीं पंचवर्षीय योजना में धीरे-धीरे लागू किया जा रहा है। अभी यह दर सिर्फ़ साढ़े तीन से पांच फीसदी है। इतना ही नहीं, 11वीं पंचवर्षीय योजना में कुल योजना बजट का 19.7 फीसदी शिक्षा के लिए ही दिया गया है।

भारत अपनी जीवनदायिनी नदियों की धारा के लिए ही विख्यात नहीं रहा है, बल्कि इसकी ज्ञानधारा की गूंज पूरी दुनिया में सुनाई देती रही है। इसका असर आज भी दिख रहा है। अमरीका की सिलिकॉन वैली भारतीय सॉफ्टवेयर इंजीनियरों की बदौलत चमक रही है। सॉफ्टवेयर की दुनिया में भारतीय धमक का असर भारत के बंगलुरु जैसे नगरों में भी दिख रहा है। आज भारत में चार सौ के क़रीब सरकारी विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा सुलभ करा रहे हैं जिनमें 16 केंद्रीय विश्वविद्यालय हैं। इसी तरह 128 डीम्ड विश्वविद्यालयों के साथ ही छह आईआईटी, आईआईआईटी और आईआईएम समेत कई संस्थान व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा की ज्योति से भारत को प्रकाशित कर रहे हैं।

भारत की बढ़ती जनसंख्या का रोना तो खूब रोया जाता है। परंतु यह भी सच है कि इस पर प्रभावी रोक के उपाय कभी राजनीतिक बंधनों के चलते तो कभी सरकारी सदिच्छा की कमी के चलते परवान नहीं चढ़ पाए। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इसके पीछे हमारी स्वास्थ्य सेवाओं में आया बदलाव भी बड़ी वज़ह रहा है। भारत की आबादी क़रीब 1.5 फीसदी की रफ़्तार से बढ़ रही है। यानी हर साल क़रीब 1.5 करोड़ लोग आबादी का हिस्सा बन जाते हैं। इसके पीछे हैजा, चेचक और तपेदिक जैसी महामारियों पर प्रभावी रोक बड़ी वज़ह है। देश के कई पिछड़े और आदिवासी इलाकों में दूर-दराज़ के गांवों के लिए डॉक्टर अब भी एक बड़ा सपना है। लेकिन यह भी सच है कि देश के कई इलाकों और गांवों तक डॉक्टरों और स्वास्थ्य सेवा के कार्यकर्ताओं की पहुंच बढ़ गई है। राष्ट्रीय विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भारत एवं यूनिसेफ ने अगस्त 2008 में पांचवर्षीय एक्शन प्लान आरंभ किया है। इसका मुख्य उद्देश्य शिशु एवं मातृ मृत्युदर में कमी लाना, कुपोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष एवं शिशु रक्षा सुनिश्चित करना होगा। इतना ही नहीं, अब स्वास्थ्य सेवाओं पर ख़र्च होने वाली राशि को सघऊ के एक प्रतिशत से बढ़ाकर दो से तीन फीसदी करने का लक्ष्य भी रखा गया है।

यही कहानी भारतीय टेलीविजन उद्योग की भी है। प्रसार भारती के आंकड़ों के मुताबिक देश के क़रीब 8 करोड़ लोगों के पास टेलीविजन सेट हैं। इनमें से चार करोड़ 15 लाख सेट नगरों में हैं, जबकि क़रीब 3 करोड़ 79 लाख गांवों में हैं। इनमें से चार करोड़ 15 लाख घरों में उपग्रह या केबल कनेक्शन हैं। देश में आज़ादी के बारह साल बाद दूरदर्शन आया तथा पैंतीस साल उसे रंगीन होने में लगे। दूरदर्शन के विकास की यह नींव वर्ष 1985 में राजीव गांधी ने रखी थी उपग्रह और निजी चैनलों की बाढ़ के लिए पिछली सदी के आखिरी साल से लेकर अब तक का समय सबसे मुफ़ीद रहा है।

यह सच है कि पिछली सदी के आखिर तक शहरी भारत भी केरोसिन के धुएं या फिर कोयले की धुएं भरी आंच में खाना पकाने के लिए मजबूर था। लोगों के लिए गैस सपना था। लेकिन आज शहरों की कौन कहे गांवों में भी रसोई गैस आसानी से उपलब्ध है। हालांकि आबादी के हर हिस्से तक इसकी पहुंच अब भी नहीं हो पाई है। लेकिन यह भी सच है कि इस दिशा में किए गए प्रयास कम नहीं हैं। यही हाल ऑटोमोबाइल उद्योग का भी है। हालांकि दिल्ली और मुंबई जैसे शहरों छोटे शहरों-कस्बों तक ऑटोमोबाइल की लगातार बढ़ती संख्या ने बुरी गत बना दी है। शहरी यातायात व्यवस्था चरमरा रहा है। लेकिन यह भी सच है कि आज जितने लोगों के पास कारें हैं, क़रीब एक दशक पहले तक उतना सोचना भी मुश्किल था। सफलताओं की ये कहानियां नागरिक उड्डयन और दूसरे अनुभागों में भी पूरी की गई हैं। लेकिन देश की भारी जनसंख्या के सामने ये अब ऊंट के मुंह में जीरा के ही समान लग रहीं हैं। आर्थिक उदारीकरण ने देश की तस्वीर चमकदार बनाने में मदद की है लेकिन यह चमकदार तस्वीर शहरी भारत में ही ज्यादा दिख रही है। वर्ष 2020 तक देश की शहरी आबादी के दोगुना होने का अनुमान भी लगाया जाने लगा है। यानी शहरी भारत चमकदार और करोड़पतियों का होगा। लेकिन योजना आयोग के तहत गठित अर्जुन सेनगुप्ता समिति की रिपोर्ट ने इस चमक पर पानी फेर दिया है। रिपोर्ट में यह माना गया है कि चमकते देश में अब भी 83 करोड़ 70 लाख लोग रोज़ाना सिर्फ़ बीस रुपये या उससे भी कम पर गुज़ारा करने को मज़बूर हैं। यह अंधेरा इतना गहरा और बदरंग है कि सफल प्रयोगों की सूची उसके सामने अलक्षित ही रह जाती है। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।
ई-मेल : uchaturvadi@gmail.com)

भारत में जनस्वास्थ्य
थोड़ी हक़ीक़त ज्यादा फ़साना

● ए.के. अरुण

भारत की आज़ादी की आधी सदी बीत चुकी है। भारतीय गणतंत्र की स्थापना के इन छह दशकों में यहां के लोगों की सेहत की पड़ताल के साथ-साथ जनस्वास्थ्य और पर्यावरण की स्थिति की समीक्षा ज़रूरी है।

अंग्रेज़ शासित भारत में स्वास्थ्य समस्याओं का अध्ययन एवं उपयुक्त स्वास्थ्य प्रणाली के चुनाव के लिए कई समितियों का गठन किया गया था। आज़ादी के बाद देश के विकास के लिए भारत सरकार ने 'भोर समिति' की सिफारिशों का सहारा लिया। भोर समिति के सदस्य चूंकि आधुनिक चिकित्सा, एलोपैथी के चिकित्सक थे इसलिए समिति ने एलोपैथी को ही राजकीय मान्यता प्रदान की है। ज़ाहिर है कि औपचारिक रूप से एलोपैथी को श्रेष्ठ माना गया जबकि होमियोपैथी, आयुर्वेद, सिद्ध और यूनानी जैसी चिकित्सा पद्धतियां ज्यादातर अपने विशिष्ट गुणों के कारण टिकी रहीं। भोर समिति ने स्वास्थ्य सेवा के विकास के लिए एक श्रेणीबद्ध प्रणाली के गठन का सुझाव दिया। इस सुझाव के अनुसार प्रत्येक 20,000 की आबादी पर एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र की स्थापना की बात थी। समिति ने स्पष्ट कहा था कि स्वास्थ्य सेवाओं का अधिकांश लाभ ग्रामीण क्षेत्रों को मिलना चाहिए। विडंबना देखिए कि सन् 1950 में ही भारतीय स्वास्थ्य सेवा की तस्वीर उभरी उसमें 81 प्रतिशत सुविधाएं शहरों में स्थापित हुईं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के मुताबिक उस दौर में 27,000 लोगों पर औसतन एक डॉक्टर उपलब्ध था।

फिर 1959 में डॉ. ए.एल. मुदलियार की अध्यक्षता में एक दूसरी समिति तब के स्वास्थ्य सेवा की परिस्थितियों की समीक्षा के लिए बनी। इस समिति ने पाया कि डॉक्टर ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने को इच्छुक नहीं हैं। तब मुदलियार समिति ने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों के बजाय जिला अस्पतालों को मज़बूत करने का सुझाव दिया। इस दौर में भारतीय दवा उद्योग एक प्रमुख शक्ति के रूप में उभर रहा था। देश में छोटे-बड़े कोई 2,600 दवा उत्पादक थे। इनमें से बड़ी पूंजी वाले 125 दवा उद्योग को ही मुदलियार समिति ने मान्यता दी । इस समिति ने बड़ी जनसंख्या को भी देश के आर्थिक विकास में बाधा माना।

1960 का अंत होते-होते देश में जन-आंदोलन उभरने लगा। दरअसल, सरकार की नीतियों से असमानताएं घटने के बजाय बढ़ने लगी थीं। सबको रोटी, कपड़ा, मकान और बेहतर जीवन उपलब्ध कराने के बजाय सरकारी नीतियों के परिणामस्वरूप अमीर और अमीर तथा ग़रीब और ग़रीब होने लगे। स्वास्थ्य सेवाओं के बारे में भी सरकार को मानना पड़ा कि डॉक्टरों से गांव में जाकर सेवा देने की उम्मीद करना बेकार है। फिर सरकार ने सामुदायिक स्वास्थ्य सेवा को विकसित करने का मन बनाया। इसी नज़रिये से डॉ. जे. बी. श्रीवास्तव की अध्यक्षता में एक और समिति बनी। इस समिति ने सुझाव दिया कि ग्रामीण स्तर पर स्वास्थ्य व चिकित्सा सुविधा के लिए

बड़ी संख्या में स्वास्थ्य कार्यकर्ता तैयार किए जाएं तथा परिवार नियोजन को विकास कार्यक्रमों का अंग बनाया जाए। इसके लिए भारत ने विदेशी बैंकों से कर्ज़ लेना शुरू किया। धीरे-धीरे भारत अंतरराष्ट्रीय बैंकों के कर्ज़ के जाल में फंसता चला गया। 1991 से तो भारत सरकार ने खुले रूप से अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक की आर्थिक नीतियों को ही लागू करना आरंभ कर दिया। इसका देश के आम लोगों के जीवन पर गहरा असर भी दिखने लगा। स्वास्थ्य और शिक्षा पर सरकारी ख़र्च में कटौती तथा स्वास्थ्य सेवाओं के निजीकरण के परिणामस्वरूप बीमारी से जूझते आम लोगों की तादाद बढ़ने लगी। दवा कंपनियों ने भी दवाओं पर क़ीमतों का नियंत्रण समाप्त करने का दबाव बनाया और दवाएं महंगी हो गईं। दवाओं के महंगा होने का सबसे दुखद पहलू है जीवनरक्षक दवाओं का बेहद महंगा होना। उदाहरण के लिए आइसोनियाजिड टी.बी. के लिए डेप्सोन और क्लोफजमीन कुष्ठ रोग के लिए, सल्फाडॉक्सिन और पाइरीमेतमीन मलेरिया के लिए आवश्यक है। ये दवाइयां अब इतनी महंगी हो गई हैं कि आम लोग इसे ख़रीद नहीं पा रहे।

ग्रामीण स्वास्थ्य की हक़ीक़त

आज भी देश की तिहत्तर प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है, फिर भी वहां उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाएं शहरों के मुक़ाबले पंद्रह प्रतिशत भी नहीं हैं। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार देश में 2,083 लोगों पर एक चिकित्सक और प्रति छह हज़ार लोगों पर एक सहायक नर्स उपलब्ध होने चाहिए। लेकिन सत्तर से अस्सी प्रतिशत चिकित्सक और नब्बे प्रतिशत नर्सें शहरी क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। इससे समझा जा सकता है कि ग्रामीण स्वास्थ्य व्यवस्था की हक़ीक़त क्या है।

ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों पर सुविधाओं का अभाव एक अहम मुद्दा है, लेकिन यह भी सच है कि चकाचौंध के इस दौर में कोई चिकित्सक अधिकारी या सरकारी बाबू गांवों में रहना ही नहीं चाहता। आज भी गांवों में वहां के लोगों के स्वास्थ्य की पहरेदारी वे तथाकथित चिकित्सक ही करते हैं जिन्हें 'झोला छाप डॉक्टर' कहा जाता है।

इस वक्त हमारे देश में डॉक्टर और जनसंख्या का अनुपात विश्व स्वास्थ्य संगठन की सिफ़ारिश के मुताबिक ठीक है। बावजूद इसके ग्रामीण क्षेत्रों में डॉक्टरों की बहुत कमी है। शहरों में जहां 662 की आबादी पर औसतन एक डॉक्टर है वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में 8,333 की आबादी पर एक डॉक्टर है। डॉक्टर गांव की अपेक्षा शहर में काम करना पसंद करते हैं। भोर समिति ने अपने अध्ययन में पाया था कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में डॉक्टर और जनसंख्या के अनुपात में भारी अंतर है। तब समिति ने अनुशंसा की थी कि ज्यादा से ज्यादा डॉक्टर तैयार किए जाए और उन्हें सरकारी नौकरी देकर गांवों में भेजा जाए। मगर इस सिफ़ारिश के तीस वर्ष बाद यानी 1975 तक भी स्थिति में बदलाव नहीं आया। इन वर्षों में मेडिकल कॉलेजों में डॉक्टरों की संख्या में भारी वृद्धि हुई, फिर भी गांवों में चिकित्सकों के पद खाली ही रहे। उदाहरण के लिए, 1972 में कुल 5,192 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र थे। सरकार ने प्रत्येक केंद्र के लिए दो-तीन डॉक्टरों के पद सृजित किए थे। पर मात्र 2,951 केंद्रों पर ही दो-तीन डॉक्टर जा पाए। 2,101 प्राथमिक केंद्रों पर एक-एक डॉक्टर गए और 140 केंद्र खाली रहे। उस समय देश में डॉक्टर-जनसंख्या अनुपात 4,200 लोगों पर एक डॉक्टर का था। यह भी तथ्य है कि उसी समय मुंबई, दिल्ली और कोलकाता में मात्र 500 लोगों पर एक डॉक्टर उपलब्ध था।

डॉक्टरों की संख्या में लगातार वृद्धि और ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी नौकरियों के अवसरों से भी डॉक्टरों का 'शहर प्रेम' नहीं डिग पाया। वास्तव में 1960-70 के दशक में बड़ी संख्या में डॉक्टर विदेश चले गए थे। 1963-66 के बीच हुए एक अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि उस दौरान मेडिकल डिग्री प्राप्त छात्रों में साठ प्रतिशत ऐसे थे जिनके माता-पिता या तो सरकारी नौकरी में थे या स्वयं डॉक्टर थे।

एक अन्य अध्ययन के अनुसार 1978 में इकतालीस प्रतिशत डॉक्टर निजी प्रैक्टिस में थे। पच्चीस प्रतिशत सरकारी नौकरी और 10.5 प्रतिशत विदेशों में कार्यरत थे। 1990 तक तिहत्तर प्रतिशत डॉक्टर निजी प्रैक्टिस में आ गए थे, जबकि सरकारी नौकरी में डॉक्टरों की पर्याप्त मांग थी। उस समय भी यह सुझाव दिया गया था कि डॉक्टर एक निश्चित अवधि के लिए गांवों में जाकर सेवाएं दें लेकिन तब भी इसका डटकर विरोध हुआ था। आज 18 वर्ष बाद भी स्थिति वैसी ही है।

ग्रामीण स्वास्थ्य की उपेक्षा की एक वजह स्वास्थ्य शिक्षा की विषयवस्तु भी है। इन दिनों एमबीबीएस शिक्षा का पाठ्यक्रम ही ऐसा है कि वह आम लोगों, खासकर ग़रीबों से चिकित्सकों का अलगाव बढ़ाता है। मेडिकल शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य यह होना चाहिए कि देश की स्वास्थ्य समस्याओं से निबटने के लिए ज़रूरी ज्ञान और हुनर डॉक्टरों को दिए जाएं। भारत में स्थिति यह है कि पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद भी मेडिकल छात्रों को देश में सबसे ज्यादा होने वाली बीमारियों के बारे में बहुत कम जानकारी होती है। उन्हें जिन बीमारियों के बारे में पढ़ाया जाता है वे भारत में बहुत कम होती हैं।

उदाहरण के लिए, बहुतेरे डॉक्टर टीबी, कोढ़ या कालाजार जैसे रोगों के बारे में ज्यादा नहीं जानते। इसके विपरीत विद्यार्थियों को हृदय रोग, कैंसर, डायबिटीज, एचआईवी जैसे रोगों के बारे में विस्तार से पढ़ाया जाता है। सब जानते हैं कि ये बीमारियां उन बहुत थोड़े लोगों को होती हैं जो प्रायः शहरी और संपन्न वर्ग के होते हैं। आम बीमारियों की उपेक्षा का कारण शायद यही है कि इनकी चपेट में ग़रीब लोग आते हैं। शायद यह भी माना जाता हो कि इन बीमारियों का अध्ययन बौद्धिक तौर पर चुनौतीपूर्ण नहीं है।

ग़रीब मरीजों से मेडिकल छात्रों के अलगाव का सबसे बड़ा कारण शायद यह है कि चिकित्सा शिक्षा में अस्वस्थता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। स्वास्थ्य शिक्षा में मुख्य रूप से इस बात पर ज़ोर है कि बीमारी हो जाने पर उसका इलाज़ कैसे किया जाए। इसमें सामाजिक हालात को समझने की कोशिश नहीं की जाती, यानी यह कि इन बीमारियों का मूल स्रोत क्या है। जो बीमारियां ग़रीबी या अभाव का नतीज़ा है उनकी या तो उपेक्षा की जाती है या फिर कुछ समय के लिए कामचलाऊ इलाज कर दिया जाता है। जैसे औरतों में खून की कमी या बच्चों में कुपोषण के मूल कारणों की उपेक्षा की जाती है। मेडिकल विद्यार्थियों को सिखाया जाता है कि इनका इलाज गोलियों, इंजेक्शन या विटामिन की टिकिया से किया जा सकता है।

1995 में जारी एक रिपोर्ट में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अत्यधिक ग़रीबी को अंतरराष्ट्रीय

वर्गीकरण में एक रोग माना है। इसे जेड 59.5 का नाम दिया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है कि ग़रीबी तेज़ी से बढ़ रही है और इसके कारण विभिन्न देशों में और एक ही देश के लोगों के बीच की दूरियां बढ़ती जा रही हैं। इससे स्वास्थ्य समस्या और गंभीर हुई है। एक आकलन के अनुसार, पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में प्रत्येक तीन में से दो बच्चे कुपोषित हैं तथा इनमें से चालीस प्रतिशत बच्चे भारतीय हैं।

स्वास्थ्य शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की मौजूदा नीति साफ़तौर पर निजीकरण और वैश्वीकरण की पक्षधर है। सरकार स्वयं स्वास्थ्य क्षेत्र को तेज़ी से निजी क्षेत्र में धकेल रही है। ज़ाहिर है, सरकार का यह दृष्टिकोण संविधान के संकल्प 'सबको मुफ़्त स्वास्थ्य सेवा' उपलब्ध कराने की भावना के एकदम प्रतिकूल है। सरकार के शहर प्रेम से हमारे डॉक्टर भी प्रभावित हैं और वे मुनाफ़े के इस धंधे को और विकसित करने में लगे हुए हैं। गांव की परवाह है किसे ?

स्त्री स्वास्थ्य की हक़ीक़त

आज़ादी के बाद से अब तक भारत में दो राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण हुए हैं। इसमें भारत सरकार तथा अंतरराष्ट्रीय जनसंख्या अध्ययन संस्थान ने संयुक्त रूप से हिस्सा लिया। सार्वजनिक रूप से अप्रकाशित इन सर्वेक्षण रिपोर्टों के अनुसार प्रत्येक एक लाख जीवित शिशु के जन्म पर लगभग 540 माताओं की मृत्यु हो जाती है। बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश व कुछ पूर्वोत्तर प्रदेशों में मातृ मृत्युदर तो इससे भी ज्यादा है।

अपने देश में औरतों की नाजुक सेहत की वजह जानने के लिए उनकी जिंदगी पर जन्म के बाद से ही नज़र दौड़ानी होगी। जानी-मानी फ्रेंच लेखिका सीमोन द बोउवार कहती हैं, ''औरत की सेहत इसलिए ख़राब है, क्योंकि वह स्त्री है।''

हाल ही में संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष द्वारा भारत में महिला स्वास्थ्य पर जारी रिपोर्ट का सारांश है कि देश में महिला स्वास्थ्य की स्थिति बेहद गंभीर है। रिपोर्ट के अनुसार समाज में स्त्री के लिए पर्याप्त पोषण आहार किसी भी सरकारी एजेंडे में नहीं है। उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष ने सितंबर 2000 में आठ सहस्राब्दि लक्ष्य तय किए थे, जिनमें से एक महिलाओं के स्वास्थ्य से संबंधित है। 189 देशों के इस समूह ने सन 2015 तक महिलाओं के लिए समता और स्वास्थ्य की बेहतरी का लक्ष्य तय किया है। रिपोर्ट कहती है कि भारत में प्रत्येक 5 में से एक गर्भवती महिला खून की कमी (एनीमिया) से जूझ रही है। गांवों में ही नहीं, शहरों के सरकारी अस्पतालों तक में ग़रीबों को मिलने वाली सुविधाएं सरकार समेटती जा रही है। यही वजह है कि भारत शिशु मृत्युदर और प्रसव के दौरान होने वाली मौतों के मामले में दुनिया के सबसे अग्रणी देशों में है। भारत में औरतें पुरुषों के मुक़ाबले कम उम्र में ही मर जाती हैं। हमारे देश में स्त्री-पुरुष अनुपात भी अन्य देशों से कम हैं। आंकड़ों के अनुसार भारत में स्त्री-पुरुष का अनुपात 933:1000 है, जबकि रूस में यह 1140:1000 है। महिलाओं की कमज़ोर सेहत की वजहों में कुपोषण खास महत्वपूर्ण है। पंजाब जैसे समृद्ध प्रदेश में लड़कियों में कुपोषण का प्रतिशत लड़कों से ज्यादा है। आंकड़े बताते हैं कि गर्भ में लड़का होने पर माताएं 90 प्रतिशत पोषण प्राप्त करती हैं, जबकि लड़कियों के मामले में ऐसी माताओं का प्रतिशत सिर्फ़ 72.7 है। ग्रामीण लड़कों की तुलना में 52 प्रतिशत ग्रामीण लड़कियां कुपोषित हैं। शहरी मध्यम वर्ग में यह प्रतिशत 9.8 प्रतिशत की तुलना में 15 है। अध्ययन बताता है कि देश के ग्रामीण इलाकों में पुरुषों को प्रतिदिन 1,700 कैलोरी ऊर्जा की तुलना में महिलाओं को 1,400 कैलोरी ऊर्जा ही भोजन से प्राप्त होती है, जबकि गांव में महिलाओं को पुरुषों की अपेक्षा ज्यादा श्रम करना पड़ता है। अध्ययन बताता है कि महिलाएं स्वास्थ्य सुविधाओं का इस्तेमाल कम कर पाती हैं। पश्चिम बंगाल और उत्तर प्रदेश से प्राप्त आंकड़ों में सरकारी अस्पतालों में 67 प्रतिशत पुरुषों की तुलना में 43 प्रतिशत औरतें ही चिकित्सा सुविधा ले पाती हैं। अनुमान है कि मार्च 2011 तक भारत की जनसंख्या 117 करोड़ 89 लाख होगी, जिसमें लगभग आधी आबादी महिलाओं की होगी। ज़ाहिर है कि बालिकाओं के विकास, स्त्रियों में प्रजनन और बाल स्वास्थ्य संबंधी ज़रूरतें पूरी करने के लिए व्यापक पद्धति की मदद से कम बजट में बेहतर स्वास्थ्य की व्यवस्था कार्यक्रम तथा स्त्री स्वास्थ्य के लिए होमियोपैथी अनुसंधान परिषद ने भी स्त्री एवं शिशु कल्याण के लिए राष्ट्रीय अभियान चलाने का निर्णय लिया है। यदि व्यवस्थित रूप से होमियोपैथिक दवाओं और चिकित्सकों की मदद से महिलाओं की सेहत सुरक्षा का कार्यक्रम चलाया जाए तो स्थिति बदल सकती है। लेकिन ज्यादा ज़रूरी है स्त्रियों के प्रति पुरुष सत्ता की मानसिकता में बदलाव।

मर्ज़ बढ़ते ही गए ज्यों-ज्यों दवा की!

1993 में विश्व बैंक ने स्वास्थ्य पर एक निर्देशिका प्रकाशित की जिसका शीर्षक है- 'इंवेस्टिंग इन हेल्थ'। इन निर्देशिका में उन देशों के लिए सुझाव दिए गए हैं जिन्होंने विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष से कर्ज़ लिया है। ज़ाहिर है कर्ज़दार देशों को कोषदाता के इशारे पर स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे बुनियादी मामलों में बजट कटौती करनी पड़ रही है। अब तो स्वास्थ्य के क्षेत्र को मुनाफ़े की दुकान में तब्दील करने के प्रयास हो रहे हैं।

विज्ञान और तकनीकी के क्षेत्र में हुए विलक्षण विकास को भी नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। हमारे देश में चिकित्सा सुविधा में उल्लेखनीय तरक़्क़ी हुई है मगर यह तरक़्क़ी बेतुकी, असंतुलित व असमान तरीक़े से हुई है। औसत स्वास्थ्य सूचकांक में सुधार को लेकर ज्यादा उत्साहित होने का कोई कारण नहीं दिखता क्योंकि ये उपलब्धियां वास्तव में देश के कुछ क्षेत्रों में हुई प्रगति के ही परिणाम हैं। केरल, गोवा, तमिलनाडु जैसे राज्यों की स्थिति निश्चित ही अन्य राज्यों से बेहतर है। विश्लेषण

करने पर साफ़ पता चलता है कि 80 प्रतिशत स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ मात्र 20 प्रतिशत आबादी को ही मिल रहा है। स्वास्थ्य बजट का प्रमुख भाग तो शहरी अस्पतालों और शोध केंद्र की साज-सज्जा, कर्मचारियों के वेतन आदि में ही खप जाता है। मसलन प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं सदैव उपेक्षित रहती हैं।

आज हमारे देश में रिकार्ड खाद्य उत्पादन होता है। भारत में खाद्य उत्पादन का आंकड़ा 19.5 करोड़ टन का है। हमारे पास साढ़े तीन करोड़ टन अनाज बफर स्टॉक के रूप में है। निश्चित रूप से इस उपलब्धि का असर भारत के लोगों की सेहत पर पड़ा है लेकिन भुखमरी और अनाज के अभाव में आत्महत्या करने वाले ग्रामीणों की ख़बरें भी अख़बारों की सुर्खियों में रही हैं।

कई बीमारियों के बारे में मान लिया गया था कि इन पर काबू पा लिया गया है लेकिन वे फिर से सर उठा रही हैं। जल, हवा और मिट्टी में तेज़ी से घुलता ज़हर जीवन के लिए ख़तरा बन रहा है। विकास की चमक में जीवन की गुणवत्ता घट रही है। अनेक घातक नये रोग लाइलाज हैं और चिकित्सा वैज्ञानिकों के लिए भी पहेली हैं। भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद के आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 50 लाख से भी ज्यादा लोग जानलेवा कैंसर से ग्रस्त हैं। हर साल 15 लाख से भी ज्यादा लोग कैंसर के शिकार हो रहे हैं। तंबाकू के बढ़ते चलन ने अनेक जानलेवा रोगों के प्रसार को सुगम बना दिया है। एड्स, हेपेटाइटिस बी, डेंगू, मलेरिया की घातक जाति चुनौती की तरह है।

बढ़ती महंगाई और ग़रीबी ने इधर ऐसा गठजोड़ स्थापित कर लिया है कि लोग खुदकुशी करने को मज़बूर हैं। कंप्यूटरीकरण एवं निजीकरण ने जहां खास किस्म के नौकरियों के द्वार खोले हैं तो वहीं बड़े पैमाने पर श्रमिकों को रोज़गार से बेदखल होना पड़ा है। भारत जैसा बड़ा मानव संसाधन वाला देश अपने मानव संसाधन की इतनी उपेक्षा करेगा तो उसका कैसा विकास होगा यह सहज समझा जा सकता है।

स्वास्थ्य के नाम पर किया जाने वाला ख़र्च भी घटा है। थाइलैंड, फिलीपीन, घाना, वियतनाम आदि देश आर्थिक मामलों में भारत से ग़रीब ही हैं लेकिन सेहत के मामले में भारत से ज्यादा ख़र्च करते हैं।

इसमें शक नहीं कि चिकित्सा तकनीक में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं लेकिन यह तकनीक भारत के आम आदमी की पहुंच से कोसों दूर है। अपोलो जैसे अस्पताल निश्चित ही भारत के लिए गौरव हैं लेकिन आम मरीज वहां जाने की जुर्रत भी नहीं कर सकता। रोग निदान की अति आधुनिक तकनीक से रोग होने से पूर्व ही रोगी को सतर्क किया जा सकता है लेकिन आम आदमी इस तकनीक का ख़र्च नहीं उठा सकता।

स्वास्थ्य की नयी चुनौतियां

दुनिया में तेज़ी हो रहे आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलाव का मनुष्य के जीवन और स्वास्थ्य पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। हाल के वर्षों में नयी आर्थिक नीति और वैश्वीकरण के प्रभावी होने से कई देशों में जहां कुछ खास लोगों की समृद्धि का मार्ग प्रशस्त हुआ है, वहीं बड़े पैमाने पर ग़रीब बनाने की प्रक्रिया में तेज़ी आई है। साथ ही असमानता और लोगों में असुरक्षा की भावना भी बढ़ी है। विकास की इसी पृष्ठभूमि में इक्कीसवीं सदी में भागती दुनिया के सामने अनेक लाइलाज़ पुराने और फिर से लौटे जानलेवा रोगों से लड़ने की चुनौती भी है। इस वर्ष विश्व स्वास्थ्य संगठन की मुख्य चिंता यही है।

वर्ष 2007 को विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 'अंतरराष्ट्रीय स्वास्थ्य सुरक्षा वर्ष' के रूप में मनाने की घोषणा की थी। इस स्वास्थ्य चिंता में एक बड़ा ख़तरा 'पर्यावरण विनाश' भी महत्वपूर्ण रूप से जुड़ गया है। हाल ही में एक और रिपोर्ट आई है जिसमें संयुक्त राष्ट्र की 'इंटरगवर्नमेंट पैनल ऑन क्लाईमेट चेंज' यानी आईपीसीसी ने सख़्त चेतावनी देते हुए कहा है कि पृथ्वी के बढ़ते तापमान के लिए इंसान ही जिम्मेदार है और इसे बढ़ने से रोकने के लिए मानवीय गतिविधियों पर लगाम लगानी होगी। आईपीसीसी ने कहा है कि ग्लोबल वार्मिंग की वजह से समुद्र के जलस्तर में नवासी सेंटीमीटर की वृद्धि हो जाएगी, जिससे सन् 2030 तक दो हज़ार से ज्यादा द्वीप जलमग्न हो जाएंगे। अगर कोई कारगर उपाय नहीं ढूंढा गया तो इंडोनेशिया के अनेक द्वीप, सेंट लुइसिया, फ़ीजी और बहामा जैसे देशों का तो नामोनिशान मिट जाएगा। इस रिपोर्ट के मुताबिक सन 2030 तक गर्मी से होने वाली महामारियों, चर्म रोग, कैंसर आदि में बेतहाशा वृद्धि होगी। कुल मिलाकर पर्यावरण का यह संकट मानवीय नुक़सान का मुख्य कारक होगा।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की अन्य चिंताओं में महत्वपूर्ण है– 'भविष्य के प्रति आशंका'। इसके अलावा बढ़ते रोग, दवाओं का बेअसर होना, रोगाणुओं-विषाणुओं का और घातक होना, बढ़ती आबादी और ग़रीबी गंभीर समस्याएं खड़ी कर रही हैं। समाधान के लिए संगठन 'स्वास्थ्य के लिए ज्यादा निवेश' की बात कर रहा है। संगठन मानता है कि कई देशों में स्वास्थ्य पर सरकारी बजट नाकाफी है। दूसरी ओर, दुनिया के स्तर पर बढ़ी विषमता ने स्थिति को और ज्यादा जटिल बना दिया है। संगठन की पहले की रपटों पर गौर करें तो पाएंगे कि अमीर देशों में जो स्वास्थ्य समस्याएं हैं, वे अधिकतर अमीरी से उत्पन्न हुई हैं। इसके उलट तीसरी दुनिया के देशों की स्वास्थ्य समस्याएं आमतौर पर संसाधनों की कमी, गंदगी और कुपोषण की वजह से हैं।

ज़ाहिर है कि अगर अमीर देश अपनी अमीरी थोड़ी कम करें और ग़रीब देशों को पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराएं तो जहां अमीर देशों में विलासितापूर्ण जीवनशैली से होने वाले रोगों में कमी आएगी, वहीं ग़रीब देशों में अभावों से होने वाले रोगों और मौतों को टाला जा सकेगा। संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों को देखें तो आज दुनिया में कोई एक सौ तीस करोड़ निर्धन हैं और लगभग चौरासी करोड़ लोग भूख से त्रस्त हैं। प्रतिवर्ष एक करोड़ दस लाख बच्चों की मृत्यु पांच वर्ष से भी उम्र में हो जाती है। इन मौतों को महज थोड़े संसाधन के इंतजाम से टाला जा सकता है।

आंकड़े बताते हैं कि ग़रीबी का सबसे प्रमुख कारण विषमता है, जिसमें हाल के वर्षों में तेज़ी से बढ़ोतरी हुई है। सन 1960 में विश्व की कुल आय में दुनिया के बीस फीसदी नीचे के लोगों का हिस्सा लगभग सवा दो फीसद था, जो 1994 में और कम होकर क़रीब एक फीसदी रह गया और वर्ष 2004 में यह आंकड़ा और नीचे आ गया। जबकि इसी दौरान ऊपर के बीस फीसदी लोगों का हिस्सा उनहत्तर फीसदी से बढ़कर छियासी फीसदी तक पहुंच गया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की पिछले साल की रिपोर्ट बताती है कि हम छूत के रोगों के विश्वस्तरीय संकट के कगार पर खड़े हैं और कोई भी देश इससे सुरक्षित नहीं है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने प्राकृतिक आपदाओं, आर्थिक विषमता और अंतरराष्ट्रीय मानवीय खतरों पर तो चिंता जताई ही है, साथ ही रासायनिक, जैविक और विकिरण के ख़तरों को भी रेखांकित किया है। संगठन ने चेतावनी दी है कि दुनिया में बढ़ती आर्थिक विषमता के कारण वंचित लोगों में असंतोष बढ़ रहा है। लिहाज़ा, आतंकवाद के बढ़ने की आशंका है। बुनियादी स्वास्थ्य व्यवस्था का चरमरा जाना संगठन की एक और चिंता है।

ज़ाहिर है, बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत और प्रभावी बनाए बगैर स्वस्थ समाज की कल्पना बेमानी है। अंधाधुंध उपभोग और संसाधनों के असमान वितरण के बीच दुनिया भर में विषमता की खाई भी तेज़ी से बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में रास्ता सिर्फ़ यही बचता है कि अमीर और शक्तिशाली देश अगर अपनी हठधर्मिता छोड़ कर समता और न्याय पर आधारित प्रकृतिसम्मत जीवनशैली को बढ़ावा दें तो वर्तमान संकट को कम किया जा सकता है। महज दवाओं के आविष्कार या प्रचार से मौजूदा घातक रोगों का मुक़ाबला नहीं किया जा सकता।

विदेशी गिरफ़्त में फंसती सेहत

आज़ादी से पहले भारत में अंग्रेज़ों के द्वारा 1911 में बनाया गया पेटेंट कानून लागू था। इसकी वजह से भारतीय दवा उद्योग पर पूरी तरह से बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कब्ज़ा था। उस समय देश जीवनरक्षक दवाओं के लिए भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निर्भर था। आज़ादी के बाद कई समितियों और विशेषज्ञ समूहों के गठन, अध्ययन के बाद 1970 में भारतीय पेटेंट कानून बना। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्ष 1970-80 के दशक में भारत ने न सिर्फ़ दवाओं के उत्पादन में आत्मनिर्भरता हासिल की, बल्कि निर्यात के क्षेत्र में भी हमारे दवा उद्योग के कदम तेज़ी से बढ़े। इस देशी कानून का इतना असर हुआ था कि दवा उत्पादन की 5,000, लघु मध्यम और बड़ी दवा कंपनियां बढ़कर 24,000 हो गईं और दवा उत्पादन में 48-50 गुना वृद्धि हो गई। 1971 से 1998 तक दवा निर्यात में 18 फीसदी की वृद्धि हुई। इस दौर में भारत सबसे बड़ा दवा उत्पादक देश था। अब हवा उलटी बह रही है।

विश्व व्यापार संगठन के दबाव में भारत सरकार ने 1998 में पेटेंट (संशोधन) अधिनियम के जरिये 1970 के भारतीय पेटेंट कानून को बदल दिया है। अब 10 वर्ष बाद स्थिति यह है कि भारतीय दवा उद्योग लगभग पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों और अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के कब्ज़े में है। पेटेंट और एक्सक्लुसिव मार्केटिंग राइट (ईएमआर) जैसे प्रावधानों के बलबूते मुनाफ़ाखोर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने दवा बाज़ार को अपने अकूत मुनाफ़े का स्रोत बना दिया है।

1998 से पहले जब देश में भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 लागू था। तब भारतीय दवा उद्योग 12,068 करोड़ रुपये मूल्य के दवा का उत्पादन करता था। भारतीय दवा कंपनियां हज़ारों करोड़ रुपये मूल्य की दवा तो विदेशों में निर्यात करती थीं। लेकिन अब विश्व व्यापार संगठन के प्रावधान लागू होने के बाद जब दवा बाज़ार पूरी तरह बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए खोल दिया गया है तब से देश की छोटी-बड़ी दवा कंपनियों के बंद होने या बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा उन्हें अधिग्रहित करने का सिलसिला चालू है। अभी दो वर्ष पूर्व 2008 में भारत की सबसे बड़ी दवा निर्माता कंपनी रैनबैक्सी को जापानी बहुराष्ट्रीय कंपनी 'दाइची सैन्क्यो' ने ख़रीद लिया। ऐसे ही एक अन्य दवा कंपनी मैट्रीक्स को भी अमरीकी कंपनी मोइलान ने खरीद लिया है। वैक्सीन बनाने वाली एक अन्य भारतीय कंपनी 'शांता बायोटेक' के 60 प्रतिशत शेयर फ्रांसीसी कंपनी वायोमेरिएक्स ने ख़रीद लिए हैं। भारत में स्वदेशी दवा उद्योग को अधिगृहीत कर बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत में फिर अपनी जड़ें मज़बूत कर रही हैं। भारत में मुक्त व्यापार व्यवस्था का लाभ उठा कर बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने तीसरी दुनिया के देशों में असुरिक्षत और पुराने दवाओं, संक्रमित खाद्य पदार्थों का अंबार लगा दिया है। इस खेल में हमारी सरकार इनकी जूनियर पार्टनर बन गई है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विश्व स्वास्थ्य संगठन और संयुक्त राष्ट्र द्वारा मान्यता मिलने से दूसरों के साथ मिलकर ये संस्थाएं न्यूनतम जोख़िम उठाकर अपने निवेश का भरपूर लाभ ले रही हैं।

संक्रामक रोगों की रोकथाम के अंतरराष्ट्रीय प्रयासों को बढ़ावा देने के लिए अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य आयोग (आईसीसी) के नेतृत्व में 130 देशों में 7,000 से ज्यादा वाणिज्य कंपनियों ने सहयोग किया है। पूरी दुनिया में इस आयोग की विश्वसनीयता स्थापित करने के बाद अब साफ़ देखा जा सकता है कि यह कैसे बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों को आगे बढ़ा रहा है।

नये अनुसंधान और अध्ययन बताते हैं कि विकास प्रक्रिया, कृषि एवं उद्योग के तौर-तरीक़े कैसे रोगों से जुड़ रहे हैं। मलेरिया, दमा, एड्स टीबी आदि रोग उदारीकरण के दौर में बढ़ रहे हैं। विश्व निजी सार्वजनिक भागीदारी (जीपीपीपी) का तकाज़ा यह है कि स्वास्थ्य जैसे जनकल्याण क्षेत्र अब विश्व व्यापार संगठन के दायरे में हैं। विकासशील देशों पर विकसित देशों का दबाव सहज देखा जा सकता है। जीपीपीपी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए उपकरण सिद्ध हो रहा है। उदाहरण के लिए इस व्यवस्था के तहत 'मलेरिया के लिए दवा' अभियान में प्रतिवर्ष 3 करोड़ अमरीकी डॉलर जमा करने का लक्ष्य है लेकिन सच यह है कि इसका ज्यादा हिस्सा सार्वजनिक कोष से आएगा। कंपनियों ने तो हवाई वायदे भर किए हैं। एक और उदाहरण देखें, अमरीकी दवा कंपनी 'मायर स्क्विब ने 183 अरब अमरीकी डॉलर दवा बेच कर कमाया लेकिन जीपीपीपी के तहत पिछले पांच वर्ष में महज 10 करोड़ अमरीकी डॉलर का अनुदान दिया। स्पष्ट है, जीपीपीपी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की शक्ति का मुख्य स्रोत बन गया है और अब ये कंपनियां तीसरी दुनिया के देशों की राष्ट्रीय पूंजी को निगलने में लग गई हैं। विश्व बैंक भी अपनी रिपोर्ट में स्वीकार करता है कि अधिकांश देशों में ग़रीब देशों की स्वास्थ्य स्थिति बहुत ख़राब है।

इस पृष्ठभूमि में आम लोगों के सेहत और लोगों के स्वास्थ्य के प्रति सरकार की जवाबदेही की बात बेमानी लगती है लेकिन जनहित की बात करने वाले जनसमूह और वैकल्पिक धारा के जिम्मेवार लोगों के संगठन के समक्ष स्थिति का ब्योरा रखकर एक व्यापक पहल और प्रक्रिया की उम्मीद करना ज़रूरी है। स्वास्थ्य, शिक्षा और सेवा के दूसरे क्षेत्रों पर कंपनियों की बुरी नज़र का दुष्परिणाम हर अमीर-ग़रीब को भुगतना होगा। समाजवाद को अप्रासंगिक मान चुका साम्राज्यवाद अब जब कभी लड़खड़ाने लगता है तो लोग फिर समाजवाद की तरफ देखने लगते हैं। स्वास्थ्य जैसा ज़रूरी क्षेत्र सीधे जीवन से जुड़ा है, उस पर बाज़ार का प्रभुत्व कम हो ऐसे प्रयास की ज़रूरत है। ❑

(लेखक जनस्वास्थ्य वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त वरिष्ठ होमियोपैथिक चिकित्सक हैं।
ई-मेल : docarun2@gmail.com)

भारत में परिवहन : भविष्य की रूपरेखा

● ई. श्रीधरन

भारतीय गणराज्य की 60वीं जयंती के अवसर पर इस बात का विश्लेषण करना समय की मांग है कि हम अपने नागरिकों को भविष्य में बेहतर परिवहन सुविधाएं कैसे दे सकते हैं

भारत दुनिया की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है और उसकी संस्कृति बहुत प्राचीन है। एक गणराज्य के रूप में साठ वर्ष का समय कोई बहुत लंबी अवधि नहीं होती, लेकिन एक राष्ट्र के रूप में भारतीय गणराज्य के पिछले छह दशक इस देश के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहे हैं और इस दौरान अनेक क्षेत्रों में विकास के नये प्रतिमान स्थापित किए गए हैं। तथापि, मूल सुविधा के रूप में परिवहन विकास को संभवत: उतना महत्व नहीं दिया गया जितना इसे मिलना चाहिए था। क्योंकि संभवत: हमारे नियोजकों ने यह महसूस नहीं किया कि परिवहन क्षेत्र का भी राष्ट्र के विकास में बहुत योगदान होता है।

जैसे-जैसे समय बीता, यह महसूस किया गया कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए यातायात बहुत ज़रूरी है और इसके बिना आर्थिक गतिविधियां तेज़ नहीं हो सकतीं तथा पहुंच सीमित रहती है। धीरे-धीरे परिवहन संबंधी बुनियादी सुविधा के विकास को महत्व दिया गया और भारतीय गणराज्य की 60वीं जयंती के अवसर पर इस बात का विश्लेषण करना समय की मांग है कि हम अपने नागरिकों को भविष्य में बेहतर परिवहन सुविधाएं कैसे दे सकते हैं।

शहरों में आम परिवहन

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत में लोगों के रहन-सहन और काम करने के ढंग में मौलिक परिवर्तन हुए हैं। कई वर्ष पूर्व तक भारत का समाज प्राथमिक तौर पर एक ग्रामीण समाज था। परंतु विगत कुछ वर्षों में इसका तेज़ी से शहरीकरण हुआ है। शहरी इलाकों में रोज़गार के अवसर बहुत तेज़ी से बढ़े हैं। ताज़ा आंकड़ों के अनुसार पहले से ही भीड़भाड़ वाले शहरों की तरफ लाखों ग्रामवासी आकर्षित हुए हैं और 1951 के 17 प्रतिशत की जगह वर्ष 2001 तक शहरों का 28 प्रतिशत विकास हुआ। वर्तमान में शहरीकरण की वृद्धि लगभग 35 प्रतिशत होने का अनुमान है और संभावना है कि वर्ष 2020 तक यह वृद्धि बढ़कर 45 प्रतिशत तक पहुंच जाएगी। इस प्रकार से वर्ष 2020 तक भारत के शहरों में लगभग 50 करोड़ लोग रहने लगेंगे।

एक अनुमान के अनुसार देश के 14 शहरों में से प्रत्येक में पहले ही 30 लाख से ज्यादा आबादी रहती है। सात शहरों में प्रत्येक में 50 लाख से ज्यादा लोग रहते हैं। लेकिन शहरों में परिवहन सुविधाएं उस अनुपात में नहीं बढ़ीं जिस अनुपात में वहां आबादी बढ़ी है। हमारे अधिकांश शहरों में परिवहन सुविधाएं अधिकांशत: सड़कों पर आधारित हैं। मुंबई, चेन्नई और कोलकाता इसके अपवाद हैं जहां इस क्षेत्र में लोकल रेल महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सड़क आधारित परिवहन के परिणामस्वरूप शहरों की सड़कों पर बहुत ज्यादा भीड़भाड़ और भारी संख्या में वाहन चलते हैं जिससे काफी ज्यादा प्रदूषण होता है और वाहनों की गति भी तेज़ नहीं हो पाती। सड़क आधारित परिवहन पर निर्भरता के कारण दुर्घटनाएं भी अधिक होती हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत में हर साल लगभग 1,20,000 लोग सड़क दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं। इनमें से 2,000 लोग अकेले दिल्ली में सड़क दुर्घटनाओं के शिकार बनते हैं। इसका एक सरल समाधान यह है कि सड़कों की क्षमता बढ़ाई जाए लेकिन शहरों में पहले से ही बहुत भीड़भाड़ है और सड़कों की चौड़ाई बढ़ाने की गुंजाइश बहुत कम है।

मेट्रो व्यवस्था

उक्त बातों को देखते हुए एक ही रास्ता बचता है कि हम उच्च क्षमता वाली सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था की योजना बनाएं, जो ऊर्जा कुशल हो, सीमित सड़कों का अतिक्रमण न करे और शहर के सभी व्यापारिक और रिहाइशी इलाकों को जोड़ सके। दुनियाभर के बड़े शहरों में जो परिवहन व्यवस्था लोकप्रिय है,

वह है रेल आधारित मास रैपिड ट्रांजिट सिस्टम अथवा मेट्रो व्यवस्था। यह प्रणाली बहुत उपयुक्त है क्योंकि यह परिवहन की हर दिशा में 90 हज़ार तक सवारी ढो सकता है।

वर्तमान में भारत के सिर्फ़ दो शहरों, दिल्ली और कोलकाता में मास रैपिड ट्रांजिट व्यवस्था है। कोलकाता मेट्रो निर्धारित समय और लागत दोनों से अधिक पर बनी और इसके परिणामस्वरूप नागरिकों के समक्ष अनेक समस्याएं पेश आईं। संभवत: यही कारण था जिससे अन्य शहरों में मेट्रो संस्कृति लोकप्रिय नहीं हो पाई।

मास रैपिड ट्रांजिट (एमआरटी) व्यवस्था के बारे में लोगों की विचारधारा दिल्ली मेट्रो चालू होने के बाद से बदली। यह स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद परिवहन क्षेत्र में सबसे बड़ी घटना थी। तकनीकी रूप से अत्यधिक जटिल इस बड़ी परियोजना को पूर्व निर्धारित समय सीमा और बजट से कम में ही पूरा कर लिया गया।

दिल्ली मेट्रो रेल कॉरपोरेशन (डीएमआरसी) के साथ भारत में एक अंतरराष्ट्रीय परिवहन व्यवस्था शुरू हुई जो सच्चे अर्थों में सुरक्षित, तेज़, आरामदेह और भरोसेमंद है और जिसे आज एक बड़ी सफ़लता माना जा रहा है। दिल्ली मेट्रो के सुचारु परिचालन को देखकर देश के कई अन्य शहर भी डीएमआरसी के अनुभव से फायदा उठाने और मेट्रो व्यवस्था बनाने के इच्छुक हैं। डीएमआरसी ने बंगलुरु, हैदराबाद, मुंबई और कोलकाता में मेट्रो बढ़ाने की विस्तृत परियोजना रिपोर्ट तैयार की हैं। इसने अहमदाबाद, कोच्चि, पुणे और चेन्नई के लिए भी विस्तृत परियोजना रिपोर्टें बनाई है। वास्तव में मुंबई, बंगलुरु, चेन्नई और कोलकाता में मेट्रो निर्माण का कार्य पहले ही शुरू हो चुका है। लुधियाना, लखनऊ, कानपुर, जयपुर और नवी मुंबई तथा ग्रेटर नोएडा के लिए भी डीएमआरसी विस्तृत परियोजना रिपोर्टें तैयार करने में लगा हुआ है। चेन्नई मेट्रो और बंगलुरु हाई स्पीड एयरपोर्ट लाईन के लिए यह प्राइम कंसल्टेंट के रूप में चुना गया है। लेकिन मेट्रो व्यवस्था के लिए इनमें से अधिकांश शहरों में सार्थक रूप लेने के रास्ते में अब भी अनेक कठिनाइयां हैं।

सरकार के सक्रिय सहयोग के रूप में संस्थागत प्रबंध बहुत आवश्यक है। इस समय शहरी विकास मंत्रालय को मेट्रो की रूपरेखा में विस्तार करने का काम सौंपा गया है जिसके लिए वह अथक प्रयास कर रहा है। एक राष्ट्रीय मेट्रो रेल नीति भी तैयार की गई है जिस पर सचिवों की समिति ने विचार किया है। मेट्रो रेलवे संशोधन विधेयक, 2009 पारित करके मेट्रो परियोजनाओं को कानूनी संरक्षण भी दिया जा चुका है। इस कानून के ज़रिये मेट्रो रेलवे (निर्माणकार्य) अधिनियम, 1978 और दिल्ली मेट्रो (संचालन एवं अनुरक्षण) विधेयक, 2002 में संशोधन किया गया है और ये कानून भारत के उन सभी शहरों पर लागू किए गए हैं जिनकी आबादी दस लाख या इससे ज्यादा है।

समय की मांग है कि सरकार मेट्रो संस्कृति को बढ़ावा देने के लिए एक प्रमुख नीति अपनाए। यह एक पूर्णकालिक काम है जिसे मंत्रालय के एक छोटे समूह को सौंपकर पूरा नहीं किया जा सकता है। मेट्रो व्यवस्था के लिए अलग से एक मंत्रालय बनाना भी ज़रूरी हो गया है।

कई अन्य मुद्दे हैं जिन पर विचार करना ज़रूरी है। आजकल मेट्रो पर आने वाली कुल लागत में से 15 प्रतिशत बजट कर और तटकर चुकाने में चला जाता है। यह ऐसा ख़र्च है जिससे बचना मुश्किल है। मेट्रो व्यवस्था को इससे मुक्त करके इस ख़र्च से बचाया जा सकता है। साथ ही बड़े पैमाने पर संपत्ति विकास की अनुमति होनी चाहिए जिसके ज़रिये मेट्रो की आमदनी बढ़ाई जा सके और किराये कम रखे जा सकें।

इस समय जो योजनाएं बनाई गई हैं उनको लागू करने के लिए प्रशिक्षित जनशक्ति बहुत ज़रूरी है। यह सही है कि डीएमआरसी के कार्मिकों ने दिल्ली मेट्रो परियोजना पर काम करते हुए बहुत अनुभव प्राप्त किया है। लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है और उनका सारा ध्यान राजधानी में मेट्रो नेटवर्क बढ़ाने के लिए परामर्शी सेवाएं देने पर लग रहा है। डीएमआरसी ने दिल्ली आईआईटी के साथ सहयोग करके मेट्रो टेक्नोलॉजी में स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम शुरू करने की योजना बनाई है। यहां से पढ़कर निकले कार्यपालकों को दिल्ली और अन्य मेट्रो तंत्र में अस्सिटेंट इंजीनियर के रूप में पदस्थापित किया जाएगा। अन्य आईआईटी के साथ भी सहयोग करके ऐसे ही पाठ्यक्रम शुरू किए जा सकते हैं ताकि डीएमआरसी के कार्मिकों के अनुभवों का बेहतर ढंग से फायदा उठाया जा सके।

मेट्रो व्यवस्थाओं में इस्तेमाल की जा रही देसी प्रौद्योगिकी का मानकीकरण करने की ज़रूरत है। क्योंकि हर परियोजना के लिए दिल्ली की ही टेक्नोलॉजी और डिज़ाइन न तो ज़रूरी है और न ही वांछनीय। इसके कारण लागत और समय सीमा बढ़ सकती है। रूस और पूर्वी यूरोप के शहरों में मानकीकरण से फायदा उठाया गया है। इन शहरों में मेट्रो व्यवस्था तेज़ी से फैली क्योंकि उन्हें डिज़ाइन तैयार करने में देर नहीं लगी। चेक रिपब्लिक और युगोस्लाविया जैसे देशों ने मानक रोलिंग स्टॉक (ट्रेनें) और सिग्नलिंग उपकरण तैयार किए हैं जिसके कारण उनका रखरखाव और सेवा बेहतर है। भारत में भी इसी मॉडल का अनुसरण किया जाना चाहिए और इस महत्वपूर्ण पक्ष को नवाचार और व्यक्तिगत पहल पर नहीं छोड़ा जाना चाहिए। यह सिर्फ़ सरकार ही सुनिश्चित कर सकती है कि भविष्य में भारत के हर शहर में स्टैंडर्ड गेज की ही मेट्रो बनाई जाए क्योंकि दुनियाभर में ऐसी ही परंपरा अपनाई गई है। सरकार मानकीकरण और देसीकरण के लिए डीएमआरसी की विशेषज्ञता से लाभ उठा सकती है। बंगलुरु और बड़ोदरा के पास सालवी में रोलिंग स्टॉक बनाने के कारखाने खोले गए हैं जो डीएमआसी की ज़रूरतें पूरी करेंगे। अगर इन्हें सरकार से ज़रूरी सहायता मिले तो यह यूनिट अन्य शहरों में बनाई जाने वाली मेट्रो की ज़रूरतें पूरी कर सकती है।

एक और अप्रत्याशित समस्या जिसका डीएमआरसी को सामना करना पड़ा, यह थी कि परियोजना को सरकार के ही स्थानीय निकायों के विरोध का सामना करना पड़ा। दुनिया के अन्य देशों में स्थानीय निकाय मेट्रो निर्माण के लिए पैसे देते हैं लेकिन यहां डीएमआरसी को स्थानीय निकायों, दिल्ली विकास प्राधिकरण और दिल्ली नगर निगम से संपत्ति कर मांग की अनुमति मिलने में देर हुई। विरोधी उद्देश्यों के लिए काम करने वाले सरकारी निकाय निश्चय ही मेट्रो व्यवस्था में मददगार नहीं हो सकते। इसके लिए अधिकारियों को यह सुनिश्चित करना होगा कि ऐसी बातों के चलते मेट्रो निर्माण कार्य में रुकावट न आए।

उपनगरीय रेल और बसें

मेट्रो जैसी आधुनिक उच्च क्षमता वाली

परिवहन व्यवस्था के अलावा कुछ शहरों में कुछ हद तक उपनगरीय रेल और बस यातायात व्यवस्था विकसित किए जाने की गुंजाइश है लेकिन इन संभावनाओं से पूरा फायदा नहीं उठाया गया है। उदाहरण के लिए दिल्ली में काफी बड़ा रेलतंत्र मौजूद है जो विभिन्न दिशाओं से आने वाली रेलों का केंद्र है। दुर्भाग्य की बात है कि इस रेल व्यवस्था से नगर के सिर्फ़ दो प्रतिशत यात्री ही सफ़र कर पाते हैं। रेल व्यवस्था का उच्चीकरण और आधुनिकीकरण ऐसी समस्याओं को सुलझाने में किफ़ायती समाधान होते हैं और इनके कारण शहर और उपनगरों में भीड़भाड़ कम होती है। इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि रेलवे उपनगरीय गाड़ियां चलाने का इच्छुक नहीं है और सरकार भी उनके सामने असहाय दिखती है या फिर उनके काम में दखल देने में असमर्थ है जिसके कारण उपनगरीय व्यवस्था में सुधार नहीं हो पा रहा है।

जहां तक तेज़ बस परिवहन का सवाल है, यह उन शहरों के लिए अच्छा विकल्प है जहां एक ही दिशा में जाने वालों की संख्या प्रतिघंटे दस हज़ार के आसपास है। सच्चाई यह है कि डीएमआरसी ने खुद तिरुअनंतपुरम और कोझीकोड के लिए ऐसी व्यवस्था की सिफ़ारिश की है। लेकिन इस तरह की परिवहन व्यवस्था उन शहरों के लिए उपयुक्त नहीं है जिनकी आबादी काफी ज्यादा है क्योंकि वहां बहुत जल्दी-जल्दी बसें चलाना संभव नहीं है। ज्यादा-से-ज्यादा हर घंटे 120 बसें चल सकती हैं जो 12,000 से अधिक मुसाफिर नहीं ढो पाएगी। दिल्ली मेट्रो जैसी व्यवस्था एक घंटे में एक ही दिशा में 75,000 तक सवारियां ले जाने की क्षमता रखती है।

राष्ट्रीय सड़क तंत्र

भारत एक विशाल देश है और यहां की अधिकांश सड़कें 70 प्रतिशत से ज्यादा माल और सवारियां ढोने की क्षमता प्रदान करती हैं। इसीलिए भरोसेमंद और सुरक्षित सड़कें आर्थिक विकास के लिए बहुत ज़रूरी है। कई दशकों तक राष्ट्रीय राजमार्गों के विकास पर ज़ोर दिया जाता रहा लेकिन वाहन यातायात बहुत बढ़ गया है और अब सड़कों पर पहले के मुक़ाबले कई गुना ज्यादा दबाव पड़ रहा है। नयी सड़कें बनाने और मौजूदा सड़कों को चौड़ा करने और सुधारने के लिए बहुत कुछ करने की ज़रूरत है। राष्ट्रीय राजमार्गों को भी इसी प्रकार से उन्नत करना आवश्यक है। इस दिशा में स्वर्णिम चतुर्भुज परियोजना शुरू की गई है और उम्मीद है कि इस प्रकार की परियोजनाएं शुरू करने का काम तेज़ होगा।

एक और परियोजना जो राष्ट्र के लिए बहुत महत्वपूर्ण है वह है, प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना जो भारत निर्माण कार्यक्रम का एक हिस्सा है। दशकों तक बुनियादी सुविधाओं की कमी, खासतौर से सड़कों के न होने से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास रुका रहा और शायद यही कारण है कि बड़ी संख्या में लोग गांवों से उठकर शहर आ गए। प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना इस समस्या को सुलझाने की दिशा में अच्छा प्रयास है। लेकिन अफ़सोस की बात है कि अभी तक इस परियोजना के अतंर्गत नयी सड़कों के विकास का सिर्फ़ 49 प्रतिशत हिस्सा ही पूरा हो सका है और 55 प्रतिशत सड़कों का उच्चीकरण किया गया है। स्पष्ट है कि इस दिशा में काफी काम बाकी है। संभवतः ऐसी योजनाओं में सबसे बड़ी मुश्किल यह है कि इनके लिए कोई केंद्रीकृत कमान नहीं है और वास्तविक निर्माण कार्यों के लिए राज्य सरकारें जिम्मेदार हैं। अगर सरकार प्रधानमंत्री ग्रामीण सड़क योजना को एक ही प्रशासन के तहत ला सके और उनका प्रतिभा के आधार पर एक ही नेता हो जिसका अपना अच्छा रिकॉर्ड हो, तो निश्चय ही यह योजना बहुत कामयाब हो सकती है। इसमें शक नहीं कि इस कार्यक्रम में भी बुनियादी रुकावटें हैं जिन्हें पहले दूर करने की कोशिश करनी होगी।

भारतीय रेल

भारतीय रेल ऐसा विभाग है जो अंग्रेज़ों के राज में सबसे ज्यादा लाभान्वित हुआ। लेकिन यह दुर्भाग्य की बात है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इसमें सुधार लाने की कोई कोशिश नहीं की गई। पिछले साठ वर्षों में जो उल्लेखनीय परियोजनाएं रेलतंत्र के विकास के लिए चलाई गईं, उनमें कोंकण रेलवे एक है और दूसरी है कश्मीर घाटी रेल योजना जो अभी पूरी नहीं हुई है। रेलवे ने सेवाओं में सुधार के लिए उपलब्ध प्रौद्योगिकी का पर्याप्त उपयोग नहीं किया है और 1930 का सामान्य यात्री अगर आज भी रेल यात्रा करे, तो उसे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नज़र नहीं आएगा।

इसलिए आधुनिकीकरण और रेलों की सुरक्षा में सुधार लाने के लिए एक नीति की आज सख़्त ज़रूरत है। इस समय रेल विभाग का सारा ज़ोर माल ढोने के लिए अलग से एक समर्पित गलियारा बनाने पर है और इसके विकास के लिए अलग से एक कॉरपोरेशन बनाया गया है। लेकिन प्राथमिकता एक ऐसे समर्पित गलियारे के निर्माण को मिलनी चाहिए, जो तेज़ी से यात्रियों को उनके गंतव्य तक सुरक्षित पहुंचा सके और इसके लिए सभी मेल और एक्सप्रेस गाड़ियां काम करें। ऐसा करने के बाद जो क्षमता शेष रहे, उसका इस्तेमाल माल ढोने में किया जाए।

विमानन

भारत के विमान क्षेत्र की बुनियादी सुविधाएं काफी नहीं हैं। अगर बढ़ रहे विमान यात्रियों की संख्या पर ही ध्यान दें, तो पता चलेगा कि उनकी ज़रूरतें पूरी करने के लिए कुछ नहीं किया जा रहा है। खुशी की बात यह है कि हाल ही में सरकार ने दिल्ली और मुंबई जैसे बड़े हवाईअड्डों के उच्चीकरण के लिए क़दम उठाए हैं। लेकिन ऐसा लगता है कि हमारे नीति-निर्माता अब भी भविष्य की ओर नहीं देख रहे हैं। देश को आधुनिक हवाईअड्डों की ज़रूरत है जो मौजूदा हवाईअड्डों के मुक़ाबले संख्या और आकार में कम-से-कम तीन-चार गुना बड़ा हो। बंगलुरु में देवनहल्ली और हैदराबाद में शम्साबाद के पास ग्रीनफील्ड हवाईअड्डे बनाए जा रहे हैं लेकिन ये काफी नहीं है और इसी तरह की अन्य परियोजनाएं, खासतौर से दूरदराज़ के इलाक़ों में शुरू किए जाने की ज़रूरत है ताकि देश के हर कोने को विमान सेवा से जोड़ा जा सके।

निष्कर्ष

पिछले साठ वर्षों में भारत चीन के बाद दूसरे नंबर की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में उभरा है। लेकिन सोचने की ज़रूरत यह है कि चीन ने जहां अपनी परिवहन मूल सुविधाओं में भारी पूंजी निवेश किया है, वहीं भारत ऐसा करने में विफल रहा है। समय आ गया है जब हम अपनी परिवहन मूल सुविधाओं के समुचित विकास पर ध्यान दें। ऐसा करके ही हम अपने देश को विकसित राष्ट्रों के समूह में उसका उचित स्थान दिला पाएंगे। ❑

(लेखक दिल्ली मेट्रो रेल निगम लिमिटेड के प्रबंध निदेशक हैं।
ई-मेल : anuj@delhimetrorail.com)

भारतीय कृषकों की दशा

● विनोद कुमार सिन्हा

प्रारंभ से ही भारत को एक कृषिप्रधान देश माना गया है। अंग्रेज़ जब व्यापार के उद्देश्य से भारत आए और यहां के शासक बन गए तब उन्हें यह आभास नहीं था कि एक दिन उन लोगों को बोरिया-बिस्तर बांधकर यहां से जाना होगा। अत: उन्होंने कृषि प्रधान भारत की नब्ज़ पकड़ी और कृषि की उन्नति हेतु कई अनुसंधान केंद्रों की स्थापना की।

वर्ष 1905 में बिहार के जिला दरभंगा के पूसा क्षेत्र में एक अमरीकी समाजसेवी हेनरी फिप्स की आर्थिक सहायता से कृषि अनुसंधानशाला की स्थापना की गई। उस समय यह संस्थान कृषि अन्वेषण की जननी मानी जाती थी। कहा जाता है कि पूसा का नाम हेनरी फिप्स के नाम से जुड़ा है। हेनरी फिप्स के नाम का पहला अक्षर 'पी' और उनके देश के नाम 'यूएएस' को मिलाकर 'पूसा' बन गया। सन 1911 में इस संस्थान का नाम परिवर्तित होकर इंपीरियल इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चरल रिसर्च हो गया। वर्ष 1934 के भूकंप में इसका भवन ध्वस्त हो गया। तब इसे वर्ष 1936 में दिल्ली स्थानांतरित कर दिया गया। दिल्ली में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद आज भी पूसा के नाम से विख्यात है।

उन्हीं दिनों तमिलनाडु के कोयम्बटूर में 1912 ई. में गन्ना अनुसंधान पर कार्य हुआ। सन 1911 में बंगाल में भी धान अनुसंधान पर कार्य प्रारंभ हुआ परंतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद दिल्ली वर्ष प्रशासन के अंतर्गत कटक में वर्ष 1936 में धान अनुसंधान केंद्र की स्थापना हुई।

फिर भी पराधीन भारत अन्न के मामले में स्वावलंबी नहीं बन सका। धान की उपज जहां स्पेन में 62 क्विंटल, ऑस्ट्रेलिया में 59 क्विंटल जापान में 52 क्विंटल प्रति हेक्टेयर (2.47 एकड़) थी वहां भारत में मात्र 15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर थी। गेहूं की उपज तो और भी कम थी और पीएल 480 के अंतर्गत अमरीका से गेहूं आता था। यह सिलसिला आज़ादी के कुछ वर्षों बाद तक चलता रहा।

कृषि में वैज्ञानिक चमत्कार

गणतंत्र भारत की कृषि में विज्ञान ने चमत्कार ला दिया। भारत में भोजन के उद्देश्य से मुख्यत: धान, गेहूं तथा मक्का की खेती की जाती रही है तथा नकदी फ़सल के रूप में पहले मात्र गन्ना की फ़सल उगाई जाती थी। धान की खेती हेतु 1951 में पी.एल. कपाड़िया के नेतृत्व में महाराष्ट्र सरकार ने एक प्रतिनिधि मंडल जापान भेजा और वहां से जापानी पद्धति आई जो पूरे भारत में प्रसारित तथा विकसित हुई।

1964 में फारमोसा (ताईवान) से 'तैचूंग नेटिव' धान की प्रभेद लाई गई। अंतरराष्ट्रीय धान अनुसंधान केंद्र मनीला (फिलीपींस) से भी धान की कई उन्नत प्रजातियां लाकर भारत में विकसित की गई।

गेहूं की हालत तो और भी ख़राब थी। वैज्ञानिकों के अनुसार पूरे विश्व में गेहूं की 4 प्रमुख जातियां हैं– 1. ट्रिटिकम स्फोरोकोकम, 2. ट्रिटिकम डायकोकम, 3. ट्रिटिकम एस्टिबम और 4. ट्रिटिकम ड्यूटम।

भारत में मोहन-जोदाड़ो की खुदाई में जो गेहूं के दाने मिले थे वे ट्रिटिकम स्फोरोकोकम जाति के थे। इसकी बालियां बहुत छोटी होती थीं जिसके फलस्वरूप इसकी उपज क्षमता बहुत कम थी।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रयास से वर्ष 1963 में रॉकफेलर फाउंडेशन की सहायता से बहुत से बौने गेहूं के प्रभेद प्राप्त हुए जिसमें मुख्यत: सोनोरा-63, सोनोरा-64, लटका रोटो तथा मायो-64 ने पूरे भारत में क्रांति ला दी। बोरलॉग का भी कृषि अनुसंधान में बहुमूल्य योगदान रहा।

गेहूं में बौनापन लाने हेतु वैज्ञानिकों ने बड़ा प्रयास किया। गेहूं में 3 जीन होते हैं। पहले एक जीन के प्रभेदों को लाया गया– तब दो जीन। अब तो तीन जीन के प्रभेद भी आ गए हैं। आज़ादी से पूर्व जहां प्रति हेक्टेयर गेहूं की उपज 5 से 10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर थी वहां आज पीबीडब्ल्यू-343, एचडी-2733, एचडी-2824, एचपी-1731, एचपी-1761 आदि गेहूं की किस्में समय पर बुआई करने से और सिंचित अवस्था में 45 से 50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज देती है।

मक्का की उपज भी पहले बहुत कम थी। मक्के का फ़सल लगाने का समय अधिकतर जून होता है। परंतु भारत के कई प्रदेशों में अधिक वर्षा से फ़सल मारी जाती है। बिहार में 3 दिसंबर, 1970 को राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद ने पुन: एक क्षेत्रीय केंद्र के रूप में यहां कार्यारंभ किया। बिहार के राजेंद्र कृषि विश्वविद्यालय एवं अनुसंधान केंद्र की यह देन है कि यहां शोध किया गया और देश में पहली बार शीतकालीन मक्का की खेती की गई। विज्ञान ने इतना चमत्कार दिखलाया कि अब संकर तथा संकुरण मक्का के बीजों का भी उत्पादन हुआ।

नर जनक पराग द्वारा मादा जनक से निकली सिल्क का पराजित होना आवश्यक है। यही

बीज जनक पौधों की नरमंजरी से निकला पराग बीज जनक पौधों के सिल्क को पराजित नहीं करता है तो संकर बीज नहीं बनता। अत: खेत में दो जनकों में से मादा जनक की नरमंज़री निकालकर उस पौधे के सिल्क को दूसरे के पराग से परणित कराने पर संकर बीज बनता है।

किंतु संकर बीज प्रतिवर्ष बदलना होता है जो ग़रीब किसान के लिए समस्या बन जाती है। अत: एक संकुरण किस्म तैयार किया गया जिसका बीज तीन साल तक काम कर सकता है।

वर्ष 1963 में भारत सरकार ने एक राष्ट्रीय बीज निगम की स्थापना की। 1966 में लोकसभा में बीज अधिनियम भी पारित हुआ।

सन 1966 में ही गोविंद बल्लभ पंत कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। इसके साथ ही कृषि की शिक्षा एवं विकास में एक नया युग का प्रारंभ हुआ। विश्वविद्यालय को 4,800 हेक्टेयर का राजकीय तराई फार्म अनुदान के रूप में दिया गया। 27 फरवरी, 1969 को कंपनी अधिनियम के अंतर्गत तराई विकास निगम का पंजीकरण हुआ।

कृषि में जो आशातीत प्रगति हुई उसका मुख्य कारण नयी उन्नत किस्मों में महत्वपूर्ण परिवर्तन है। आनुवांशिकी और पादप प्रजनन के वैज्ञानिक तरीक़ों के आविष्कार से पौधों के चयन, संकरण, बहुगुणन एवं अन्य विशिष्ट तकनीकों का विकास हुआ। इसके साथ ही प्रगतिशील कृषकों की भी खेती में रुचि बढ़ी।

जब तत्कालीन प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री ने 'जय जवान-जय किसान' का नारा दिया तब कई लोग नौकरी छोड़कर खेती करने लगे। पंजाब विश्वविद्यालय, लुधियाना एवं प्रताप सिंह कैरो का भी कृषि एवं कृषकों के विकास में बहुत बड़ा योगदान है। पहली बार प्रताप सिंह कैरो ने लुधियाना में 'किसान-घर' बनाया था जहां पूरे भारत के किसान जाकर रहते थे और विश्वविद्यालय का भ्रमण करते थे, आज भी जाते हैं।

1965 में किसानों एवं बीज उत्पादक संघों के संयुक्त प्रयास से एक राष्ट्रीय टनेज क्लब की स्थापना दिल्ली में हुई थी। इसके सदस्य वे ही बनते थे जो एक एकड़ में कम-से-कम एक मीट्रिक टन अन्नोत्पादन करते हों या करने को प्रयत्नशील हों। मद्रास में तीन दिनों का कृषक सम्मेलन हुआ और संपूर्ण भारत के कृषक उसमें सम्मिलित हुए।

व्यावसायिक कृषि

अब सरकार, वैज्ञानिक एवं कृषकों की सोच ने कृषि को व्यावसायिक बना दिया है। परंपरागत पद्धति से धान, मक्का, गेहूं उपजाने से इस दौड़ में कृषक पीछे पड़ जाएंगे। अब खाद, बीज, डीज़ल, कृषि उपकरण, श्रमिकों का पारिश्रमिक आदि बहुत महंगे हो गए हैं। पारंपरिक खेती से अधिक लाभ मुश्किल है।

अत: अब सर्पगंधा, लेमन ग्रास, सफेद मुसली, अश्वगंधा, सतावर, पुदीना, खहन, कारममेघ, पीपर आदि औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती होने लगी है। पहले गन्ने की खेती को नकदी फ़सल माना जाता था। अब गन्ने की मिठास किसानों को रास नहीं आ रही है क्योंकि गन्ने की फ़सल में लागत मूल्य तथा समय दोनों अधिक लगते हैं और उसके तुलना में लाभ कम होता है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लोक-लुभावन हाइब्रीड बीज से कृषि में क्रांति लाने का सपना किसानों को लुभा पाने में अब नाकाम साबित हो रहा है।

अब किसान परंपरागत खेती छोड़कर औषधीय एवं सुगंधित पौधों की खेती करके खुशबू फैलाने के साथ मोटी कमाई भी कर रहे हैं। लेमनग्रास एवं मेंथा (जापानी पुदीना) से निकले तेलों की मांग अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में बढ़ी है। बिहार के तुरकौलिया नया टोला (चंपारण) के एक किसान कन्हैया सिंह ने एक प्रेस संवाददाता को बतलाया कि वे केवल खेती ही नहीं करते बल्कि गांव में ही आसवन संयंत्र स्थापित कर लिया है और तेल निकालकर व्यापार शुरू कर दिया है। उन्होंने बताया कि लेमनग्रास की खेती में एक एकड़ में 3 साल में क्रमश: 40 हज़ार, 35 हज़ार तथा 30 हज़ार ख़र्च करने पर क्रमश: 80 हज़ार, 70 हज़ार और 75 हज़ार का तेल निकलता है। उत्तराखंड की महिलाएं भी लेमनग्रास की खेती करने लगी हैं।

उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड में किसान पोपुलर की खेती कर रहे हैं। दियासलाई बनाने वाली कंपनियां किसानों से अनुबंध कराकर खेती का ख़र्च भी देती हैं और पांच वर्ष के बाद सारा पोपुलर लकड़ी ख़रीदकर ले जाती है। एक एकड़ ज़मीन में पांच वर्ष में किसानों को लगभग 4.5 लाख रुपये प्राप्त होता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान के महानिदेशक डॉ. मंगला राय ने सलाह दी है कि लीची से शराब बनाकर बिहार के किसान लाभ उठा सकते हैं। सरकार भी यह उद्योग चला सकती है।

उन्होंने छोटे किसानों के लिए समेकित कृषि प्रणाली की भी वक़ालत की है। उन्होंने बतलाया कि एक एकड़ में फ़सल, मत्स्य पालन, कुक्कुट पालन, बागवानी के साथ डेयरी भी चलाया जा सकता है।

बिहार के मुजफ्फरपुर जिला के सरैया प्रखंड के भटौलिया का एक युवक अविनाश कुमार ने इंटर के बाद पुणे में बायोटेक में नामांकन के बाद अपने प्राध्यापक डॉ. अनिल हारदे की देखरेख में केले पर टिश्यू कल्चर शोध शुरू किया। अब टिश्यू कल्चर 'वार.जी. 9' नाम देकर उसने खेती प्रारंभ की। उन्होंने अपने गांव में ही मुजफ्फरपुर बॉटेनिकल रिसर्च इंस्टीट्च्यूट की स्थापना कर रखी है। उनका कहना है कि मात्र एक हेक्टेयर में खेती कर किसान प्रतिवर्ष इससे ढाई लाख रुपये कमा सकते हैं।

कृषि विकास की सरकारी योजनाएं

भारत सरकार एवं प्रदेश सरकारों ने कई योजनाएं चलाकर कृषि को विकासोन्मुख बनाया है।

भारत सरकार द्वारा मैक्रोमोड योजनाएं चलाई जा रही हैं। इसके अंतर्गत समेकित सीरियल विकास कार्यक्रम, उर्वरता प्रबंधन कार्यक्रम तथा समेकित कीट व्याधि प्रजनन कार्यक्रम (आईपीएम) आते हैं।

मैक्रोमोड योजना के अंतर्गत कृषि यंत्र खरीद में सरकारी अनुदान प्राप्त होता है। कम क़ीमत वाले यंत्र का 25 प्रतिशत तथा ट्रैक्टर, थ्रेसर आदि अधिक क़ीमत वाले यंत्रों में 30 हज़ार रुपये तक का अनुदान है। पावर टिलर पर 30 हज़ार से 60 हज़ार तक अनुदान है। किसी-किसी छोटे औज़ार पर 50 प्रतिशत अनुदान है।

भूमि संरक्षण निदेशालय द्वारा राष्ट्रीय जल छाजन विकास परियोजना चलाई जाती है। अब तो वायुयान से बादलों के ऊपर सिल्वर आयोडाइड के छिड़काव से कृत्रिम वर्षा की भी बात की जा रही है।

सरकार की एक योजना राष्ट्रीय बागवानी मिशन है। इसमें नये बागों की स्थापना, पुराने बागों का जीर्णोद्धार, मसाले तथा सुगंधित पौधों की खेती, नारियल, चाय, काजू आदि तटवर्ती बागवानी, सिंचाई हेतु टैंक, फार्म पौंड, निर्माण, स्प्रिंकलर सिंचाई, मधुमक्खी पालन, ग्रीन हाउस में खेती, समेकित कीट प्रबंधन को प्रोत्साहन

आदि कई योजनाएं हैं जिसमें भारत सरकार या प्रदेश सरकार से 50 प्रतिशत से 75 प्रतिशत तक अनुदान दिया जाता है।

किसान कॉल सेंटर खोला गया है जिसमें टॉल फ्री संख्या 1551 पर फोन कर किसान कृषि विशेषज्ञों द्वारा अपनी समस्याओं का त्वरित निदान पा सकते हैं। प्रात: 6 बजे से 10 बजे तक प्रतिदिन समस्याओं का निदान किया जाता है। दूरदर्शन के कृषि दर्शन कार्यक्रम ने किसानों का भरपूर और सामयिक मार्गदर्शन किया है।

बिहार में राज्य सरकार ने वर्ष 2006 में राज्य किसान आयोग का गठन किया। बिहार राज्य कृषक सम्मान योजना भी प्रारंभ हुई परंतु चयन पर आपत्तियां उठने पर सरकार ने इसे स्थगित कर दिया। बिहार में राजकीय बीज गुणन प्रक्षेत्रों में बीज उत्पादन कार्यक्रम, मुख्यमंत्री बागवानी मिशन, बीज ग्राम योजना आदि भी चलाए जाते हैं।

कृषि वैज्ञानिक चलें अब घाघ की ओर

प्राचीन काल में 'घाघ' नामक एक कृषि पंडित थे। आज भी कृषि संबंधी उनकी कहावतें प्रसिद्ध हैं जिसे वैज्ञानिकों ने भी सही ठहराया है।

रासायनिक खादों के अधिक तथा गलत प्रयोग के कारण खेतों की उर्वरा शक्ति समाप्त हो रही है। अत: कृषि वैज्ञानिक पुन: जैविक खेती की तरफ वापस लौट रहे हैं। सड़े गोबर की खाद, राख, कंपोस्ट वगैरह का प्रयोग शुरू हो गया है। वैज्ञानिकों ने हरित शैवाल, वर्मी कंपोस्ट आदि से खेती करने की सलाह दी है। केंचुए की मदद से कंपोस्ट बनाने की विधि को 'वर्मी कंपोस्ट' कहते हैं।

जानवरों के अवशिष्ट– हड्डी चूरा का खाद, गोमूत्र एवं सींग से तैयार खाद (बायोडामय-नेमिक) राइजोबियम, एजोटोबैक्टर, एंजोस्पाइरिलम, चीनी मिल की खाद (प्रेरामड) आदि का प्रयोग अब होने लगा है।

रोग एवं कीट नियंत्रण हेतु भी अब कीटनाशक दवाओं के कम प्रयोग की सलाह दी जाती है। कीटनाशक दवाओं का असर फल, सब्जी आदि पर भी पड़ने लगा है। अत: जैविक खेती के लिए नीम उत्पाद, पाइरिथ्रम आदि वानस्पतिक उत्पाद, सल्फर, चूना आदि खनिज आधारित उत्पाद, ट्राईकोग्रामा, ट्राइकोडर्मा आदि जैव आधारित कीट एवं फफूंदीनाशी उत्पाद की सलाह वैज्ञानिक देने लगे हैं। अब जैविक खाद से बीज शोधन, पौधा शोधन एवं भूमि शोधन की सिफ़ारिश होने लगी है।

कार्बनिक खेती का मुख्य उद्देश्य मृदा, पौधों, पशुओं तथा मनुष्यों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखते हुए फ़सल की उत्पादकता बढ़ाना है। कार्बनिक खेती अपनाकर कीटनाशकों के हानिकारक दुष्प्रभाव से बचा जा सकता है। कार्बनिक सब्ज़ियों की मांग अब अमरीका, इंग्लैंड तथा अन्य यूरोपीय देशों में निरंतर बढ़ रहा है। अब वैज्ञानिक पुन: हरी खाद की तरफ वापस जा रहे हैं।

कार्बनिक खेती से उपभोक्ता की मांग में वृद्धि, सब्ज़ियों की गुणवत्ता में वृद्धि, उत्पादन में वृद्धि, रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशी दवाओं के उपयोग में कटौती, मृदा की दशा में सुधार, मनुष्यों एवं पशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा तथा वातावरण को प्रदूषित होने से बचाव आदि कई लाभ होने की आशातीत संभावनाएं हैं।

समस्या

इतने वैज्ञानिक चमत्कारों तथा अनेक सरकारी योजनाओं के बावजूद देश में हज़ारों किसान आत्महत्या कर रहे हैं, क्यों? इस पर सोचना होगा। चिंतन मनन के बाद कुछ निम्न समस्याएं प्रकाश में आती है जिसे नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता :

- देश में कर्मचारियों का, श्रमिकों का, पदाधिकारियों का संगठन है परंतु किसानों का कोई संगठन नहीं है।

  कई संगठन बने, कई राजनीतिक दल आए परंतु ढाक के तीन पात वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। नेता आगे हो गए और किसान एवं किसानों की समस्याएं पीछे रह गईं। नेता अपने को किसान का बेटा कहता है। परंतु किसानों के नेतृत्व के लिए किसान को आगे आना होगा, किसान के बेटा को नहीं।
- सरकार द्वारा अनाजों की न्यूनतम समर्थन मूल्य तय की जाती है परंतु समय पर ख़रीद नहीं होती। पूरे भारत में एकरूपता नहीं बरती जाती। पंजाब, हरियाणा में धान की खरीद एक अक्तूबर से प्रारंभ हो गई। परंतु बिहार, उड़ीसा, झारखंड आदि प्रदेशों में एक दिसंबर तक धान की खरीद प्रारंभ नहीं हुई।

  नवंबर में गेहूं बोने का समय शुरू हो जाता है। किसान को खाद, बीज, डीज़ल, पारिश्रमिक आदि व्यय हेतु पैसे की ज़रूरत होती है। सरकार ने 1,000 रुपये प्रतिक्विंटल धान का समर्थन मूल्य तय किया है। भारत सरकार एवं बिहार सरकार ने 50-50 रुपये क्विंटल बोनस देने का निर्णय लिया। परंतु क्रय केंद्र के अभाव में किसान 1,100 रुपये के बदले स्थानीय व्यापारियों तथा पंजाब के आगत व्यापारियों के हाथ 750 से 800 रुपये प्रतिक्विंटल धान बेच रहे हैं। ऐसी स्थिति में किसान आत्महत्या नहीं करेगा तो क्या करेगा?
- 2008 में चीनी 20 रुपये किलो बिकती थी तब गन्ना मूल्य 110 रुपये क्विंटल था परंतु 2009 में चीनी 40 से 45 रुपये प्रति किलो बिकती है, तब इस वर्ष गन्ना मूल्य 170 रुपये प्रति क्विंटल तय किया गया है जबकि 200 रुपये से अधिक क़ीमत होनी चाहिए।
- राष्ट्रीयकृत बैंक घर बनाने एवं कार ख़रीदने हेतु 8 प्रतिशत से 9 प्रतिशत ब्याज दर पर ऋण देते हैं परंतु ट्रैक्टर खरीदने के लिए 11 प्रतिशत की ब्याज दर पर ऋण मिलता है।
- अगर कोई उद्योग मृत हो जाता है तो उसे पुनर्जीवित करने हेतु ऋण मिलता है परंतु अगर किसान ऋण नहीं चुकाए तो उसे पुनर्जीवित करने हेतु बैंकों में कोई योजना नहीं। उसे किसान क्रेडिट कार्ड भी नहीं मिलता।
- प्रखंड में जो भी उन्नत बीज आते हैं, समय पर नहीं आते। पछात खेती करने से उपज मारी जाती है या किसान उस बीज को बर्बाद कर देते हैं।
- किसान-आयोग, समर्थन मूल्य समिति आदि में किसानों का प्रतिनिधित्व नहीं होता है। जापान के किसानों को धान का मूल्य अंतरराष्ट्रीय समर्थन मूल्य से कई गुना अधिक मिलता है।
- भारत के किसानों को अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम सब्सिडी दी जाती है।

इन समस्याओं को देखने के बाद यही निष्कर्ष निकलता है कि केंद्र सरकार तथा प्रदेश सरकार में इच्छाशक्ति का अभाव नहीं है। परंतु पदाधिकारियों, कर्मचारियों, प्रशासनिक व्यवस्था में 'कार्य-संस्कृति' का अभाव है। सरकार, पदाधिकारी, कर्मचारी सब मिलकर अगर किसानों की समस्याओं का निदान चाहेंगे तो भारत अन्न के मामले में विश्व का निर्यातक देश बन जाएगा। ❑

(लेखक साहित्यकार हैं)

भारत की अतुलनीय छलांग

● अवधेश कुमार

26 जनवरी, 1950 को जब भारत ने अपना संविधान स्वीकार कर स्वयं को एक संपूर्ण प्रभुता संपन्न गणतंत्र घोषित किया, किसने कल्पना की थी कि एक दिन ऐसा आएगा जब दुनिया की एकमात्र महाशक्ति अमरीका उसके प्रधानमंत्री के लिए पलक पांवरे बिछाएगा! किसने सोचा था कि गुलामी की बेड़ियों से मुक्त एक शोषित, दमित और ऐसा ग़रीब देश, जो अपने लोगों का पेट भरने के लिए छटपटा रहा है, उसे विश्व समुदाय भविष्य की महाशक्ति मानते हुए सम्मान देगा तथा उसके साथ रणनीतिक साझेदारी गांठने का कदम उठाएगा। आप देखिए, बराक हुसैन ओबामा द्वारा अमरीका के राष्ट्रपति का पद संभालने के बाद किसी अन्य देश के नेता के तौर पर भारत के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह केवल ह्वाइट हाउस के पहले मेहमान ही नहीं बने, उनका जैसा विशिष्ट स्वागत हुआ वह दुनियाभर की मीडिया की सुर्खियां बना। विदेशी नेताओं के आगमन पर भोज की परंपरा सामान्य है, पर प्रधानमंत्री के सम्मान में आयोजित भोज कई मायनों में विशिष्ट था। अमरीकी राष्ट्रपतियों द्वारा दिए जाने वाले रात्रिभोज से अलग ओबामा ने भारत के साथ संबंधों की संवेदनशीलता एवं महत्व को प्रदर्शित करने के लिए साउथ लॉन में बहुत बड़ा सफेद टेंट लगवाया जहां से वाशिंगटन स्मारक सीधे दिखाई पड़ता था। ओबामा ने कहा कि उन्होंने ऐसा इसलिए किया, क्योंकि भारत में हर महत्वपूर्ण कार्यक्रम सुंदर टेंटों में ही आयोजित होता है। मनमोहन सिंह के शाकाहारी होने का ध्यान रखते हुए विशेष रसोइया बुलाया गया, जिसने ह्वाइट हाउस के रसोइए की मदद की। भारत में ही ओबामा प्रशासन के इस हाव-भाव को खारिज़ करने वालों की कमी नहीं है, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रधानमंत्री एवं उनके साथ गए प्रतिनिधिमंडल का यह अमरीका की ओर से भारत का सम्मान था। आखिर ओबामा को हाथ जोड़कर हिंदी में 'नमस्ते' और 'आपका स्वागत है' कहने के पूर्व इसे सीखने एवं याद करने में कुछ वक्त तो लगा ही होगा। उन्होंने ऐसा क्यों किया? ज़ाहिर है, भारत का विश्वास जीतने की कामना उनके मन में थी और यही सबसे महत्वपूर्ण है।

किसी ऐरे-गैरे देश के प्रमुख के लिए न ऐसा आयोजन होता, न ऐसी तैयारी और न अमरीकी राष्ट्रपति को ऐसा हावभाव दर्शाने की आवश्यकता थी। यह इस बात का प्रमाण है कि 1950 से 2009 तक अंतरराष्ट्रीय पटल पर भारत का प्रयाण कितना शानदार और महिमापूर्ण रहा है। अमरीका की यात्रा के बाद प्रधानमंत्री रूस गए। रूस के राष्ट्रपति दिमित्री मेदवेदेव के साथ उन्होंने जिस नाभिकीय व्यापार एवं सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर किया वह अपने आप में ऐतिहासिक है। इसमें बगैर नाभिकीय अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर किए हुए भारत के लिए असैन्य नाभिकीय सहयोग के रास्ते में जो थोड़ी बंदिशें बचीं थीं वे सब टूट गईं। ऐसा समझौता तो शायद ही किसी देश को मिलेगा जिसमें समझौता टूटने की स्थिति में भी ईंधन की निर्बाध आपूर्ति का वायदा हो। वैसे इसकी नींव तो भारत-अमरीका नाभिकीय सहयोग संधि से ही पड़ी, किंतु यहां हमारे विचार का विषय नाभिकीय सहयोग संधि या अन्य संधियां नहीं हैं। नाभिकीय संधि और अंतरराष्ट्रीय आणविक एजेंसी से लेकर नाभिकीय आपूर्तिकर्ता समूह में इसकी पुष्टि तो केवल इस बात का सबूत है कि दुनिया के क्षितिज पर भारत कहां खड़ा है। जिस देश ने 1974 के पहले पोखरण परीक्षण तथा 1998 के दूसरे परीक्षण के बाद हम पर बंदिशों की पहल की थी उसी ने आगे बढ़कर हमें इनसे आज़ाद करने की पहल की और नाभिकीय क्लब के तमाम देशों ने इस पर अपनी सहमति की मुहर लगा दी। ऐसा इतिहास निर्माण का श्रेय अभी तक केवल भारत को ही मिला है।

भारत की समग्र स्थितियों पर हम चाहे जितनी चिंता और आशंकाएं प्रकट करें, इस ठोस तथ्य को तो स्वीकारना ही होगा कि वर्तमान विश्वव्यवस्था में इसकी धाक अतुलनीय रूप से बढ़ी है। कम से कम शीतयुद्ध के बाद किसी देश का महत्व तेज़ी से गगनचुंबी हुआ है तो वह एकमात्र भारत ही है। इस समय दुनिया का कौन-सा महत्वपूर्ण देश है जो भारत के साथ संबंध मज़बूत करने के लिए कोशिश नहीं कर रहा? केवल मज़बूत संबंध ही नहीं भारत के साथ सामरिक साझेदारी तक गांठी जा रही है। सामरिक साझेदारी बहुआयामी व्यापक साझेदारी होती है जिसमें जीवन के हर क्षेत्र यानी राजनीतिक संबंधों से लेकर बहुपक्षीय आर्थिक, विज्ञान एवं तकनीकी, शैक्षणिक, सांस्कृतिक एवं नागरिक समाज के साथ परस्पर संबंध आदि समाहित हैं। ज़रा नज़र उठाकर देख लीजिए कौन प्रमुख देश हैं जिसने भारत के साथ सामरिक साझेदारी के समझौते नहीं किए या जो करने की राह पर अग्रसर नहीं है? ऐसा कौन-सा अंतरराष्ट्रीय संगठन है जिसमें दुनिया की प्रमुख शक्तियों ने भारत को साथ लाने का कदम नहीं उठाया है? पश्चिम यूरोप के जो देश भारत के नाम से नाक-भौं सिकोड़ते थे वे आज भारत के साथ गलबहियां डाल रहे हैं। यूरोपीय संघ एवं भारत के बीच 10 शिखर सम्मेलन संपन्न हो चुके हैं। भारत की कश्मीर नीति कल तक यूरोपीय देशों के निशाने पर होती थी। सन् 2008 की रिपोर्ट में गुलाम कश्मीर के हालात एवं पाकिस्तान की नीति की आलोचना की गई। एक समय कश्मीर को

लेकर भारत पर दबाव डालने की नीतियों वाले देशों का बदलता स्वर आखिर किस बात का प्रमाण है? यूरोपीय संघ ने अमरीका, कनाडा, रूस, जापान एवं चीन के बाद सन् 2004 में सामरिक साझेदार बनने का सम्मान केवल भारत को ही दिया है। दक्षिण-पूर्व एशिया के देश भारत को अपने यहां प्रवेश देने तक के विरोधी थे। आसियान अब न केवल भारत का स्वागत करता है बल्कि इसे पूर्ण साझेदार का दर्ज़ा दे चुका है। दुनिया के संपन्नतम देशों के समूह जी-आठ तक अब भारत को अपने सम्मेलनों में बाजाब्ता आमंत्रित करता है। ठीक है कि भारत इसका पूर्ण सदस्य नहीं है, पर पहले ये देश ऐसा सोचते भी नहीं थे कि भारत जैसे तीसरी दुनिया के एक देश को अपने साथ बुलाना उनकी मज़बूरी हो जाएगी। आज जी-आठ में इस बात पर आम सहमति है कि बगैर भारत एवं चीन को साथ लिए दुनिया की आर्थिक-सामाजिक या पर्यावरण संबंधी समस्याओं का निदान संभव नहीं है। इटली के ला किला में आयोजित समूह आठ के सम्मेलन में इटली के प्रधानमंत्री ने तो चीन के साथ भारत को भी इसका पूर्ण सदस्य बनाने का प्रस्ताव रख दिया। अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक में भारत का प्रतिनिधित्व बढ़ चुका है।

आज भले हमें ये बातें सामान्य लग रहीं हों, किंतु अगर 1950, 1960, 1970, 1980 और 1990 के दशक के उत्तरार्ध तक जाकर देखें तो यह असंभव-सी कल्पना नज़र आएगी। आखिर 1991 में ही तो भारत को अपने भुगतान संतुलन के संकट को दूर करने के लिए मुद्राकोष से सोना गिरवी रखकर कर्ज़ लेना पड़ा था। गणतंत्र बनने के बाद भारत की पहली समस्या अपने विकास के लिए धन की थी और कोई देश इसे मदद देने को तैयार नहीं था। पं. नेहरू को मज़बूर होकर अमरीका के साथ वाणिज्यिक समझौता करना पड़ा था, जो अमरीका के पक्ष में ज्यादा था। ब्रिटिश शासन से मुक्ति वाले देशों के संगठन कॉमनवेल्थ तक में भारत की स्थिति प्रभावी नहीं थी। सोवियत संघ मित्र देश के रूप में विश्व राजनीति के कारण भारत के क़रीब आया, पर उसकी मदद ज्यादातर सैनिक एवं औद्योगिक क्षेत्रों में थी। तो एक समय कर्ज़खोर कहलाने वाला देश इस समय कर्ज़दाता के रूप में बदल रहा है। अमरीका के पूर्व राष्ट्रपति जार्ज बुश ने कह ही दिया कि भारत अब एक दानदाता देश है। धरती के बढ़ते तापमान पर हाल ही में संपन्न कोपेनहेगेन सम्मेलन में हमारे प्रधानमंत्री को शामिल कराने के लिए जितनी कूटनीतिक कोशिशें हुईं वह अपने आप में ऐतिहासिक है। ज़रा नज़र उठाइए, किसी दूसरे देश के प्रमुख को सम्मेलन में शामिल करने के लिए इतनी कोशिशें हुईं? 1950 तो छोड़िए, डेढ़ दशक पूर्व तक भारत की ऐसी स्थिति नहीं थी। आज भारत के प्रधानमंत्री किसी पश्चिमी देश की यात्रा करते हैं तो वहां के समाचारपत्र उसी प्रकार भारत केंद्रित विशेषांक निकालते हैं जैसा प्रमुख संपन्न देशों का निकलता था। इसके आर्थिक विकास की गाथाएं पश्चिमी देशों की मीडिया का प्रमुख विषय होता है।

अगर हम 26 जनवरी, 1950 से 26 जनवरी, 2010 की अंतरराष्ट्रीय पटल पर भारत की यात्रा की समीक्षा करेंगे तो यकीनन इसमें ऐसे कई मोड़, पड़ाव एवं अवधारणाओं के स्तर पर बदलाव भी नज़र आएगा। तीसरी दुनिया की जो कल्पना नेहरू जी ने की, वह आज के वैश्विक ढांचे में नदारद है। बांगडुंग सम्मेलन से लेकर निर्गुट की स्थापना तक में भारत की भूमिका एवं इसके पीछे के आदर्शों के स्वर धीमे पड़े हैं। दुनिया में अन्याय, शोषण और किसी प्रकार की गुलामी के विरुद्ध भारत के डटकर खड़ा होने की रोमांसवादी सोच भी प्रभावित हुई। इन सब पर बहस की जा सकती है। भारत की समग्र आर्थिक और वैश्विक नीतियों पर भी प्रश्न खड़े हो रहे हैं और ये अनुपयुक्त भी नहीं हैं। लेकिन इस समय दुनिया का जो ढांचा है उसमें भारत के समान छलांग लगाने वाला कोई दूसरा देश नहीं है। सारे सिद्धांतों के रहते 1962 में चीन के हाथों शर्मनाक पराजय की स्थिति को याद करिए। एक-एक भारतवासी का हृदय उस पराजय से आज भी कचोटता है। तीसरी दुनिया की प्रमुख आवाज़ बनते देश की ऐसी पराजय के बाद हमारी जो आभा मलीन हुई, तीसरी दुनिया व निर्गुट देशों पर से भी हमारे प्रभाव का जो लोपन हुआ उससे उबरना साधारण बात नहीं थी। आज चीन के साथ भारत के मतभेद वैसे ही गहरे हैं और वह इस समय हमसे बड़ी सामरिक एवं आर्थिक शक्ति है, लेकिन वह हमसे युद्ध का दुस्साहस नहीं कर सकता। चीन में विश्व की प्रमुख शक्तियों का आर्थिक हित 1962 की तुलना में कई गुना ज्यादा है, पर आज की दुनिया में भारत के साथ खड़ा होने वाले देशों की संख्या बहुत ज्यादा होगी।

इन प्रत्यक्ष स्थितियों को तो कोई नकार नहीं सकता। यह ठीक है कि आर्थिक उदारवाद एवं बाज़ार पूंजीवाद के दौर में शामिल होने के बाद भारतीय विदेश नीति के उच्चतम आदर्श प्रभावित हुए हैं और इस पर एक महान और ऐतिहासिक सभ्यता वाले राष्ट्र के रूप में हमें आत्ममंथन करना ही चाहिए। खासकर वर्तमान वैश्विक आर्थिक ढांचे ने जिस प्रकार भयावह जलवायु संकट पैदा कर दिया है और दुनिया के अस्तित्व पर प्रश्न खड़ा हो चुका है, उसमें हमें नये रास्तों की तलाश करनी ही होगी। हमारे प्रधानमंत्री तक कह रहे हैं कि दुनिया के अस्तित्व पर संकट पश्चिमी देशों की नीतियों के कारण पैदा हुआ है। बेशक, पैदा हुआ है। लेकिन मौजूदा विश्व व्यवस्था में हम भी तो उन्हीं नीतियों पर चलने को विवश हैं। उस समय हमारे देश की कई मज़बूरियां थीं। गुलामी से मुक्ति के बाद के पुनर्निर्माण की छटपटाहट में भारत ने पश्चिमी पूंजी तकनीक आदि स्वीकार किए। विकास के इस ढांचे ने ही अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था का वर्तमान स्वरूप दिया है। सोवियत संघ सहित साम्यवाद के अवसान ने इस व्यवस्था को ही सर्वमान्य बना दिया। इस व्यवस्था के भयावह दोष अब उजागर हो चुके हैं। अब जबकि भारत के सामने अतीत की मज़बूरियां नहीं हैं, उसे नये विकल्प की दिशा में विचार करना चाहिए। आज विश्व पटल पर भारत की बात जितनी गंभीरता से सुनी जाती है उसमें यह संभव है कि हम प्रमुख देशों को भी नयी दिशा में सोचने को प्रेरित करे। आखिर दुनिया में असमानता की खाई जिस प्रकार बढ़ रही है, तकनीकों पर कुछ देशों का जिस प्रकार का एकाधिकार कायम है, प्राकृतिक संसाधनों के भी मौजूदा आर्थिक एवं सामरिक ढांचे में उपयोग करने की क्षमता आज भी कुछ देशों के हाथों सीमित है। उसे बदले बिना बेहतर और विश्व व्यवस्था का आविर्भाव हो ही नहीं सकता। शांतिपूर्ण सहअस्तित्व वाली विश्वव्यवस्था की कल्पना को साकार करने की कोशिश भारत को ही करनी होगी। ❑

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं।
ई-मेल : awadheskumar1965@indiatimes.com)

नागरिकोन्मुखी सुशासन
राष्ट्र निर्माताओं को सच्ची श्रद्धांजलि

● जयप्रकाश नारायण

भारत गणराज्य की साठवीं जयंती अपने संस्थापक पूर्वजों की उस भावना को याद करने का सही अवसर है जिसके चरम उत्कर्ष के रूप में भारत का संविधान तैयार किया गया था। उत्तरदायित्व और जवाबदेही, सुशासन के दो ऐसे सूत्र थे जिसे डॉ. भीमराव अंबेडकर ने लोकतांत्रिक व्यवस्था को राष्ट्रपति व्यवस्था के मुक़ाबले प्राथमिकता देने के प्रमुख कारण बताए थे। संविधान निर्माता ने स्पष्ट किया था कि बहुमत के लिए संसद पर निर्भर लोकतांत्रिक सरकार अधिक उत्तरदायित्व के साथ काम करेगी। उन्हें भरोसा था या यों कहें कि वह इसे एक न्यूनतम संभावना मानते थे कि संसद प्रश्नों, प्रस्तावों, अविश्वास प्रस्तावों, काम रोको प्रस्तावों और संबोधनों पर बहस के ज़रिये सरकार के दिन-प्रतिदिन के कार्यों का मूल्यांकन करती रहेगी।

डॉ. अंबेडकर ने इन मूल्यों को राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल किया था जिन्हें बाद में भारत के संविधान विधेयक का एक भाग बना दिया गया। इन मूल्यों को इससे पहले वर्ष 1895 में एनी बेसेंट और लोकमान्य तिलक ने शामिल किया था और बाद में मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता वाली एक समिति द्वारा तैयार की गई नेहरू रिपोर्ट में 1928 में इन्हें अपनाया गया तथा इसके बाद इन्हें संविधान में शामिल किया गया। बिना रंग, वर्ग, जाति और लिंग भेद के मौलिक अधिकार और शाश्वत मताधिकार राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं के विचारों के परिणाम थे।

संविधान में सफलतापूर्वक इन मूल्यों और मानकों को शामिल किए जाने के बाद डॉ. अंबेडकर ने चेतावनी दी थी कि अगर जनता का प्रतिनिधित्व करने वाले लोग और राजनीतिक दल गैर-जिम्मेदारी से काम करेंगे तो संविधान के बावजूद सरकार विफल हो जाएगी। उन्होंने कहा था "संविधान चाहे कितना भी बढ़िया हो, जिन लोगों को उसके अनुसार काम करना है, अगर वे अच्छे न हुए तो संविधान भी बुरा हो सकता है।"

गणराज्य की स्थापना के सिद्धांतों में जिन मूल्यों को शामिल किया गया वे धीरे-धीरे सिद्धांतहीन राजनीति के चलते कमज़ोर पड़ गए। परिणाम हुआ सुशासन का गंभीर संकट। इस संकट के फलस्वरूप सामने आया अकुशल शासन, बढ़ती अराजकता, वोटों की राजनीति, राजनीति का अपराधीकरण और व्यापारीकरण, अधिकारों का केंद्रीकरण, वैध प्राधिकार का गंभीर क्षरण और अकुशल न्यायिक व्यवस्था।

मूल संकट

संविधान संस्थापक हमारे पूर्वज निश्चय ही महान प्रतिभा के धनी थे, जिनमें समर्पण, विचारों की गहराई और भविष्य की समझ थी। लेकिन देश विभाजन के कष्टों को देखते हुए जल्दी-से-जल्दी व्यवस्था स्थापित करने की मज़बूरी के चलते उन्हें सुशासन के पुराने साधनों को ज्यों-का-त्यों ज़ारी रखना पड़ा। विभाजन के समय की कष्टकारी घटनाएं, व्यवस्था की बहाली और देश की एकता और अखंडता बनाए रखना समय की मांग थी और हमारे तत्कालीन नेताओं ने इसी कारण समय की कसौटी पर खरे उतरे सुशासन के साधनों को ज्यों-का-त्यों बनाए रखने का विकल्प चुना। यह इस बात से सिद्ध होता है कि अनेक विद्वानों ने ध्यान दिलाया है कि 1935 के भारत सरकार अधिनियम और 1950 के भारत के संविधान में इन्हीं मज़बूरियों के चलते बहुत समानता दिखाई देती है।

इसके अलावा सत्ता हस्तांतरण के साथ भारतीय नेताओं में उस समय यह विश्वास भी घर कर गया था कि एक बार सत्ता मिली तो परिस्थितियां अपने आप ही सुधार जाएगी भले ही शासन के पुराने साधन चलते रहें। लेकिन बाद की घटनाओं ने इन उम्मीदों को झुठला दिया। आज़ादी के बाद के शुरुआती वर्षों में स्वाधीनता संघर्ष की याद ताज़ा थी और तत्कालीन नेताओं के बड़े कद को देखते हुए लोगों को उम्मीद थी कि भविष्य में अच्छी चीज़ें देखने को मिलेंगी। शासन तंत्र में अपर्याप्तता को वे समझ नहीं पाए। इसके कारण भले ही कुछ हद तक स्थिरता, आशा और सद्भाव बने रहे, लेकिन जब ये सभी उम्मीदें टूटीं और सत्ता में आने वाली हर राजनीतिक दल को जनता ने लगातार नामंजूर किया, तो भी कोई महत्वपूर्ण सुधार नज़र नहीं आया और आम मतदाता लगातार विरोधी होने लगा।

देखा जाए तो यह संकट अपने शासन तंत्र में दो बड़ी खामियों का नतीज़ा है- पहला यह कि सद्व्यवहार को लगातार मान्यता नहीं दी जा रही है और इसके लिए शासन की तरफ से कोई पुरस्कार नहीं मिलता और साथ ही बुरे व्यवहार को न तो रोका जाता है और न ही ऐसा करने वाले को दंडित किया जाता है। असलियत यह है कि इसके विपरीत लोगों का दृढ़ विश्वास हो चला है कि भ्रष्ट व्यवहार से इस व्यवस्था में सम्मान और सफलता सुनिश्चित होती है। दूसरी बड़ी ख़ामी यह है कि शासन व्यवस्था में सत्ता की बागडोर नौकरशाहों द्वारा संभाली जाती है। अगर सत्ता की परिभाषा इस प्रकार की जाए कि यह घटनाओं, प्रक्रियाओं, संसाधनों और मानव व्यवहार को सार्वजनिक हित में प्रभावित करने की क्षमता है, तो अब लगभग हर स्तर पर राज्य

के कार्यकर्ताओं में ऐसी सत्ता बहुत कम बची है।

लेकिन अगर सत्ता की परिभाषा अधिकार, संरक्षण, छोटे स्तर की तानाशाही, परेशान करना या लोगों के लिए परेशानी पैदा करना बताया जाए तो कहा जा सकता है कि इस समय सरकार में बैठे हर पदाधिकारी को ऐसी सत्ता मिली हुई है जिसका नकारात्मक पहलू बहुत स्पष्ट है। परिणाम यह है कि सरकार में बैठे सभी पदाधिकारी अकुशलता और बहानेबाजी के पर्याय बन गए हैं। नागरिक असहाय हो रहे हैं और वांछित परिणामों को लेकर उनमें लगातार हताशा व्याप्त हो रही है।

इन बातों के कारण राज्य की सभी संस्थाएं गंभीर रूप से विफल हो रही हैं और बिखरने के कग़ार पर पहुंच गई हैं। कार्यपालिका, विधायिका, नौकरशाही और न्यायपालिका सभी की यही दशा है। अलग-थलग होने की इस स्थिति के लिए न तो किसी को दोषी ठहराया जा सकता है और न इनका कोई खंड इस दोषारोपण से मुक्त हो सकता है। कुछ भी हो, यह विफलता इसलिए नहीं है कि व्यक्तिगत रूप से लोग विफल हो गए हैं और न ही इस कारण से आई है कि समाज में मूल्यों की कमी है। यह तो उन मौलिक कमियों का परिणाम है जो हमारे शासन तंत्र में पैठ गई हैं और जिनके कारण ऐसी दशा उत्पन्न हुई है।

अधिकतम परिणाम प्रस्तुत करने में सरकार की विफलता को देखते हुए और सत्ता का दुरुपयोग रोकने की अक्षमता के कारण नागरिकों में लगातार हताशा बढ़ रही है। बुद्धिजीवी वर्ग भले ही राज्य की छोटी-मोटी सफलताओं पर उनकी सराहना कर दे, लेकिन आमजन में गहरा असंतोष व्याप्त है क्योंकि उसे निष्पादन में व्यापक कमी, सर्वव्यापी असंवेदनशीलता, भ्रष्टाचार और अकर्मण्यता दिखाई दे रही है। यथास्थिति को बार-बार नामंजूर करने और सत्तासीन पार्टी को मताधिकार का प्रयोग करके बार-बार बाहर का रास्ता दिखाने के बावजूद उसे कोई सकारात्मक परिणाम नहीं मिल रहे हैं, हताशा बढ़ रही और लोग हिंसा का रास्ता पकड़ रहे हैं।

संपूर्ण सुधार

इसमें कोई शक नहीं कि सुशासन का संकट गंभीर हो रहा है। हमारी समस्याएं बढ़ रही हैं। हमें भारतीय गणराज्य डगमगाता नज़र आ रहा है। लेकिन भारत का संकट ऐसा नहीं है जिसे फिर से दूर न किया जा सके। इस बात का कोई कारण नहीं है कि भारत अराजकता और तानाशाही के गर्त में डूब जाए और उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाएं। गत वर्षों के दौरान इस बात पर काफी ज़ोर दिया जाता रहा है कि संकट दूर किया जा सकता है और सुधार सफलतापूर्वक लागू किए जा सकते हैं।

भारत में सुदृढ़ता, बौद्धिक एवं नैतिक संसाधन उपलब्ध हैं जिनके इस्तेमाल से साहस, संकल्पना और सृजनात्मकता का उपयोग करके इस संकट से उबरा जा सकता है। लेकिन हमें सबसे पहले इस बात को मान्यता देनी होगी कि भारतीय शासन को जिस संकट ने घेर रखा है उसका एक वास्तविक और सतत समाधान मौजूद है जो शांतिपूर्ण और लोकतांत्रिक ढंग से इस गणराज्य का कायाकल्प कर सकता है और हर स्तर पर स्वतंत्र, स्वशासी, सशक्तीकृत, स्वनियामक संस्थाओं की स्थापना करके शांति और सद्भाव बनाए रखा जा सकता है। व्यवस्था तथा स्थिरता बनाए रखते हुए देश की एकता और अखंडता सुदृढ़ की जा सकती है और ऐसा माहौल बनाया जा सकता है जिसमें स्वतंत्रतापूर्वक भागीदारी करके विकास और समृद्धि को बढ़ावा दिया जा सके।

सुधारों की सीमाएं

व्यक्तिगत बुराइयों को सुधारने की कोशिश आमतौर पर विफल रही है। इसका कारण है सुशासन के सभी पक्षों में बुराइयों का बोलबाला होना। समतावादी चर्चाओं और समग्र विकास तथा विशिष्ट पहचान संख्या जैसे सुशासन नवाचारों से सुशासन की बुराइयां कम हो सकती हैं, उनमें एकदम कोई परिवर्तन नहीं आ पाएगा। कोई भी अलग-थलग सुधार कितना भी सार्थक और प्रभावी हो, जब तक उसके साथ अन्य आवश्यक परिवर्तन नहीं किए जाएंगे, तब तक पर्याप्त परिणाम नहीं दिखाई पड़ेंगे।

उक्त पृष्ठभूमि में राजनीतिक दल और निहित स्वार्थ स्थिति के पक्ष में तर्क़ दे सकते हैं और आंशिक सुधारों की विफलता को इसका आधार बना सकते हैं। वे इसका इस्तेमाल किसी अन्य गंभीर सुधार का विरोध करने के लिए भी कर सकते हैं। अतीत में देखा गया है कि अगर सुधार अगल-थलग रहे, तो ज़रूरी होने पर भी वे राजनीतिक व्यवस्था को ऊर्जावान बनाने और सुशासन में सुधार लाने में विफल रहे। निर्वाचन के समय सुधारों की छिटपुट कोशिशें, बार-बार किए गए प्रशासनिक सुधार, लॉ कमीशन की रिपोर्टें और 50 के दशक में पंचायती राज निकायों की शुरुआत, दल बदल विरोधी कानून, 73वें और 74वें संविधान संशोधन तथा संविधान संशोधन की अन्य कोशिशें अपर्याप्त और आखिरकार निष्प्रभावी सिद्ध हुईं कोशिशों का नतीजा थीं जो गत वर्षों में शासन व्यवस्था में सुधार लाने में विफल रही।

शासन के इस संकट से निकलने का एक ही शांतिपूर्ण रास्ता है कि भारतीय शासन व्यवस्था का संपूर्ण कायाकल्प किया जाए। इसमें सत्ता की आधारभूत प्रक्रियाओं का ध्यान रखा जाए और सुनिश्चित किया जाए कि यह सही अर्थों में लोकतांत्रिक और स्वनियामक तंत्रों से युक्त हो। सुधार के हर पक्ष से भारतीय सुशासन के संकट तत्व दूर होते हों। इन तत्वों में निष्पादनहीनता और नागरिकों के वोट और कल्याण में संबंधहीनता तथा दूसरी ओर अधिकार और जवाबदेही में संबंधहीनता तथा प्रशासन और कानूनी संस्थाओं द्वारा सद्व्यवहार को पुरस्कृत करने और दुर्व्यवहार को दंडित करने में निरंतर विफलता दूर की जाए तथा राजनीतिक पदों पर बने रहने और ईमानदारी में जो सामंजस्य लगातार घट रहा है, उसे दूर किया जाए।

इस प्रकार की व्यापक सुधार प्रक्रिया से सुधार का हर तत्व दूसरे तत्व को मज़बूत करेगा और जोख़िम को कम करते हुए ऊर्जा लाएगा। समग्र सुधारों से, व्यक्तिगत संस्थाओं की विफलता से सुरक्षा के उपाय मजबूत होंगे। एक स्तर पर विफल हो जाने का मौका देकर दूसरे स्तर पर भी विफलता नहीं आने दी जाएगी। विफलताओं पर जल्दी-से-जल्दी रोक लगाई जा सकेगी और राजनीतिक व्यवस्था को इसके कारण गंभीर ख़तरा पैदा करने से रोका जा सकेगा। हमारे शासन तंत्र के संपूर्ण कायाकल्प के सभी तत्वों को हमारे लोकतंत्र, स्वतंत्रता, स्वनियामकता, सशक्तीकरण, कानून के शासन और स्वनियामक सांस्थानिक रूपरेखा को मज़बूत बनाने में सक्षम बनना होगा।

सुधारों का एजेंडा

हमें इस उद्देश्य को हमेशा दिमाग में रखना होगा कि हम अपने शासन तंत्र का कायाकल्प करें। ऐसे प्रयासों पर मोटेतौर पर समाज के सभी वर्गों में सहमति होना ज़रूरी है भले ही उनमें प्रतिस्पर्धा हो। समाज के हर खंड को इस एजेंडे में हितधारक बनना होगा और अति विघटनकारी और जटिल मुद्दों को जनता के ऊपर छोड़ देना होगा जिसे वे सामान्य मताधिकार प्रक्रिया के ज़रिये सुलझाएं। हमें एक सच्ची लोकतांत्रिक व्यवस्था का सृजन करना चाहिए जो विभिन्न विचारधाराओं, नीतिगत विकल्पों

को मंच दे सके ताकि उन पर बहस की जा सके और समय-समय पर लोग उन विकल्पों को चुन सकें। स्वाभाविक है कि इसके बाद ऐसे नीतिगत मुद्दे राष्ट्रीय सुधार एजेंडे के लिए छोड़ दिए जाएंगे। उन सभी मुद्दों को जो सुशासन की बुनियादी प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं, लोकतांत्रिक सुधारों के एजेंडे में शामिल कर लेना चाहिए। इसके अलावा लोकतंत्र के पांच घटकों - स्वतंत्रता, स्वशासन, लोगों का सशक्तीकरण, कानून का शासन और स्वनियामक, सांस्थानिक संरचना- इन सबको भी सुधारों के एजेंडे में शामिल किया जाना चाहिए। वे सारे मुद्दे जो समान्य रूप से सब पर लागू नहीं होते और जिनके कारण समाज का एक वर्ग दूसरे को नुक़सान पहुंचाकर खुद लाभान्वित होता हो ऐसे मुद्दों को सुधार एजेंडे से बाहर कर देना चाहिए। इन मुद्दों को वर्तमान में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा कर रही राजनीतिक ताक़तों द्वारा निपटाए जाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। लोकतंत्र के आवश्यक सिद्धांत, सुशासन के बुनियादी नियम और संविधान में निहित सुरक्षा के उपाय ही वे पवित्र तत्व हैं जिन पर सौदेबाजी नहीं जा सकती और जिन्हें संवैधानिक रूप से पवित्र मानकर एक-दूसरे के साथ प्रतियोगिता करने वाली राजनीतिक पार्टियां और व्यक्ति मान्यता दे और सत्ता ग्रहण करने के लिए ऐसी नीतियां अपनाएं जिन्हें समय-समय पर जनता का अधिकाधिक समर्थन मिले। सुधार एजेंडे को पक्षपातरहित और न्यूनतम बनाया जाना चाहिए और उसमें जानबूझकर बहुत जटिल और विघटनकारी मुद्दे शामिल नहीं किए जाने चाहिए। ताकि उन पर व्यापक सहमति बन पाए। ये मुद्दे व्यावहारिक हों और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और संविधान से मिले अनुभवों के अनुरूप हों।

लोकतंत्र और संवेदनशील सुशासन

लोकतंत्र को सुशासन में सुधारों का वैचारिक आधार बनना चाहिए ताकि शासन को संवेदनशील बनाया जा सके। स्वतंत्रता हर व्यक्ति का अधिकार है ताकि वह स्वतंत्रतापूर्वक सभी काम कर सके बशर्ते कि उन कार्यों के कारण अन्य नागरिकों की आज़ादी पर कोई आंच न आती हो। जहां तक स्वतंत्रता का प्रश्न है, इसमें भारत का स्थान काफी ऊंचा है और यहां के नागरिकों को ऊंचे स्तर की स्वतंत्रता प्राप्त है। लेकिन देश के अधिकांश ग़रीबों द्वारा इस स्वतंत्रता का पूरा आनंद नहीं उठाया जाता क्योंकि अपर्याप्त संसाधन और कौशल इस रास्ते में बड़ी बाधाएं हैं और ये बाधाएं भारतीय शासन तंत्र की विफलता के कारण पैदा हुई हैं। हर नागरिक को भरपूर अवसर मिलने चाहिए ताकि वह जीवन के हर क्षेत्र में भरपूर आज़ादी पा सके।

स्वशासन हर नागरिक का अधिकार है। इसके ज़रिये वह प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से अपने आप पर शासन कर सकेंगे। वर्ष 1947 में जो भी घटनायें हुईं वह एक औपनिवेशिक शासक से नेताओं के हाथ में सत्ता आने का परिणाम थीं। देश की एकता और व्यवस्था को बनाए रखने के कारण हमने अधिकारों के केंद्रीकरण की बात मान ली और जनता की भूमिका को कम महत्व दिया। इसके परिणामस्वरूप हमारी स्वशासन की क्षमता सीमित हो गई। चुनाव के समय भी मतदाता को उन्हीं उम्मीदवारों में से एक का चुनाव करना होता है जो सूची में मौजूद हैं। इस मताधिकार का सही अर्थों में परिणाम पर असर नहीं होता और स्वशासन की बात मोटेतौर पर भ्रामक सिद्ध होती है। वर्तमान संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों को सही ढंग से लागू करना इस दिशा में पहला कदम होगा।

सशक्तीकरण के ज़रिये हम नागरिकों को घटनाक्रम को निरंतर प्रभावित करते रहने में सक्षम बनाते हैं जिसके ज़रिये वे शासन के मामलों में ऐसे सार्थक फ़ैसले करते हैं जो खुद उनके जीवन को प्रभावित करते हैं। अत्यधिक नौकरशाही और केंद्रीकृत अधिकारों के माहौल में अधिकांश स्थानीय संस्थाएं हितधारकों के प्रभाव से दूर हो जाती हैं अतः नागरिकों के सशक्तीकरण का स्तर कम रह जाता है।

स्थानीय स्कूल, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र या नागरिक सेवाएं, ये सभी नागरिकों के प्रभाव से बाहर हैं। स्थानीय सार्वजनिक सेवक जनता के प्रति जवाबदेह नहीं हैं। वह अक़सर अपने आप को सेवक के बज़ाय मालिक मानता है। अनेक प्रक्रियाएं अपरिवर्तनीय, जटिल और अत्यधिक औपचारिक हैं जिनके कारण अधिकांश आमजन उन तक न तो पहुंच पाते हैं और न ही उन्हें प्रभावित कर सकते हैं। सुशासन के सभी पक्षों पर फ़ैसला करते समय नागरिकों को सर्वाधिक महत्व दिया जाना चाहिए और कोई फ़ैसला तभी नहीं किया जाना चाहिए जब नागरिक उनकी मांग करें।

कानून का शासन सभी लोगों के कानून द्वारा शासित होने की अवधारणा है। स्थान या पद के भेदभाव के बिना सभी नागरिकों को एक ही प्रकार के कानूनों से शासित होना चाहिए। लोकतांत्रिक शासन का यह आधार है और हमारी सभी संस्थाएं इनसे बंधी हुई हैं। इन संस्थाओं में कार्यपालिका और न्यायपालिका भी शामिल हैं। लेकिन असलियत यह है कि राजनीतिक दलों के कुलीनतावादी ढंग से काम करने की व्यवस्था के कारण उनके अधिकार केंद्रीकृत हो गए हैं। व्यवस्था दोषपूर्ण और अत्यधिक गोपनीय तथा छिपकर काम करने वाली हो गई है यह वर्ग विशेष के प्रति अधिक संवेदनशील है। भ्रष्टाचार के कारण सभी परेशान हैं तथा न्यायालयों से न्याय पाने में बहुत देर लगती है। इन सबके कारण ऐसा लगता है कि जिन लोगों की सत्ता, बाहुबल और धनबल तक पहुंच है उनको सामान्य नागरिकों की अपेक्षा ज्यादा सुविधायें प्राप्त हैं। इसके परिणामस्वरूप अधिकांश मामलों में कानून के शासन की अनदेखी हो रही है जिससे अधिकांश नागरिकों को असम्मानपूर्ण और हताशाभरी ज़िंदगी ज़ीना पड़ता है।

स्वशासन ऐसी क्षमता है जिसके कारण राज्य संस्थाएं अतीत के अनुभवों से शिक्षा ग्रहण करती हैं और अपने आप में सुधार लाती हैं ताकि वे लोगों की बेहतर ढंग सेवा कर सकें। कोई भी डिज़ाइन चाहे वह कितनी भी ईमानदारी और लगन से क्यों न बनाई गई हो हमेशा के लिए संपूर्ण और दोषरहित नहीं हो सकती और न ही उसमें भावी घटनाओं से निपटने की क्षमता होती है। किसी भी युक्तिसंगत, कुशल और जवाबदेह शासन तंत्र में काफी हद तक सुनम्यता होनी चाहिए, ताकि वह अपने आप को सुधारता रहे और व्यवस्था कार्यशील बनी रहे। भारत में राज्य की लगभग सभी संस्थाएं रूढ़ और जड़ हो गई हैं। उनमें स्वनियामक शक्ति नहीं बची है जो उन्हें निरंतर आधार पर सार्थक तरीक़े से काम करने के क़ाबिल बनाए।

कोई भी सुधार जिसमें लोकतांत्रिक आदर्शों को शामिल न किया गया हो घातक परिणामों वाला हो सकता है। अतीत में जितने भी सुधार किए गए उनकी विफलता से हमें शासन में सुधार शुरू करने में हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए। कोई ज़रूरी नहीं कि सुधारों से हमेशा प्रगति हो, लेकिन सुविचारित सुधारों के बिना प्रगति नहीं हो सकती। ❑

(लेखक लोकसत्ता पार्टी के अध्यक्ष हैं जो नयी पीढ़ी के लिए नयी राजनीति के हिमायती है।

ई-मेल : jp@loksattaparty.com, info@loksattaparty.com)

सभी का समाज एक बड़ी चुनौती

● ऋतु सारस्वत

भारतीय समाज में बेहिसाब असमानताएं हैं और जब तक ये नहीं मिटेंगी तब तक देश का विकास सच्चे अर्थों में हो पाना संभव नहीं है। इस विभेद का मूल कारण सरकारी नीतियों का अभाव नहीं हैं अपितु अज्ञान, अंधविश्वास और परंपरा के नाम पर प्रभुत्व स्थापना की चाह है और इसे तभी दूर किया जा सकता है जब देश की आधी आबादी के प्रति व्यक्ति अपना नज़रिया बदले

"हमारे विचार से हमारे सामने सबसे अहम मुद्दा अन्याय और असमानता कम करने के लक्ष्यों को हासिल करना है। हमें उन ज़रूरतों को पूरा करना चाहिए जो मानवीय विकास के लिए आवश्यक है"- प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह का यह वक्तव्य देश की उस पीड़ा की अभिव्यक्ति है, जो स्वतंत्रता के छह दशक पूर्ण होने के पश्चात भी कम नहीं हुई। लोकतंत्र का सर्वप्रमुख लक्ष्य ही 'सामाजिक असमानता' को पाटना है। सामाजिक न्याय, एकजुटता, सद्भाव और समानता देश के आधारभूत मूल्यों के रूप में स्वतंत्रता के पश्चात स्वीकार किए गए परंतु आज भी ये मूल्य अपना अस्तित्व तलाश रहे हैं। 'सभी का समाज' एक बड़ी चुनौती है क्योंकि देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा कुपोषण, लैंगिक एवं सामाजिक भेदभाव, ग़रीबी तथा अशिक्षा के दुष्चक्र में फंसा हुआ है। देश की आबादी आज भी अपने मौलिक अधिकारों से वंचित है, विश्व के सबसे मज़बूत गणतंत्र ने जहां सभी को अपनी इच्छा से जीने की, सोचने की, विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता दी वहीं देश की सामंती धारणाओं ने स्त्रियों को इस सुखानुभूति से अछूता रखा। इस तथ्य की पुष्टि वह आंकड़े कर रहे हैं जो विभिन्न सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों द्वारा समय-समय पर दिए जाते रहे हैं। कुछ समय पूर्व भारत लिंग भेदभाव समीक्षा, 2009 जारी की गई जिसमें इस तथ्य को उद्घाटित किया गया कि भारत में लिंगजनित भेदभाव, बांग्लादेश, श्रीलंका और नेपाल जैसे देशों से कहीं अधिक है। पुरुष-महिला समानता के संदर्भ में, विश्व आर्थिक मंच की 134 देशों की सूची में देश का स्थान 114वें स्थान पर है। भारत के हर क्षेत्र में महिलाएं दोयम दर्ज़े की नागरिकता पा रही हैं। एसोचैम की रिपोर्ट के अनुसार भारतीय महिलाएं घर और दफ़्तर हर जगह भेदभाव का शिकार होती हैं। उन्हें एक ओर काम के बेहतर अवसरों का अभाव है तो वहीं दूसरी ओर पदोन्नति के समान अवसर भी नहीं प्राप्त हैं। समान कार्य के लिए समान वेतन की योजना सामाजिक ढांचे के चलते सिर्फ़ कागज़ों तक ही सिमट कर रह गई है। श्रम मंत्रालय से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कृषि क्षेत्र में स्त्री और पुरुषों को मिलने वाली मज़दूरी में 27.6 प्रतिशत का अंतर है। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि झाड़ू लगाने जैसे अकुशल काम में भी स्त्री-पुरुष श्रमिक में भेदभाव किया जाता है। महिला आर्थिक गतिविधि दर भी केवल 42.5 प्रतिशत है जबकि नार्वे में यह दर 60.3 प्रतिशत और चीन में 72.4 प्रतिशत है। वैश्विक आकलन से पता चलता है कि विश्व के कुल उत्पादन में क़रीब 160 खरब डॉलर का अदृश्य योगदान देखभाल अर्थव्यवस्था से होता है और इसमें से भारत की महिलाओं का मुद्रा में अपरिवर्तनीय और अदृश्य योगदान 110 खरब डॉलर का है। भारत का सबसे दुखद पहलू तो यह है कि यहां जन्म से पूर्व ही लिंग के प्रति भेदभाव आरंभ हो जाता है। भारत में बालिका भ्रूण हत्या के चलते ढाई करोड़ बालिका जन्म से पूर्व ही गुम हो गईं। यही नहीं, डब्ल्यूईएफ के अनुसार बच्चियों के स्वास्थ्य और जीवन प्रत्याशा के आंकड़ों के हिसाब से भी पुरुष-महिला समानता की सूची में महिला निम्नतम पायदान पर है। 'द स्टेट ऑफ एशिया पैसिफ़िक्स चिल्ड्रेन' की रिपोर्ट के अनुसार भारत में आर्थिक, जातीय, क्षेत्रीय और शैक्षणिक

असमानता के कारण बच्चों और महिलाओं का जीवन बुरी तरह प्रभावित हो रहा है। आर्थिक गैर-बराबरी की वजह से भारतीय बच्चे असमय मृत्यु का शिकार हो रहे हैं। अपेक्षाकृत संपन्न केरल और गोवा जैसे राज्यों में औसत शिशु मृत्युदर 15 बच्चे प्रतिहज़ार हैं, वहीं उड़ीसा, बिहार एवं उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों में यह आंकड़ा प्रतिहजार 73 से 79 तक है। 'द स्टेट ऑफ एशिया पैसिफिक'स चिल्ड्रेन' की रिपोर्ट में यह स्पष्ट तौर पर उल्लेखित है कि आर्थिक रूप से संपन्न माता-पिता के बच्चों की औसत आयु निर्धन अभिभावकों के बच्चों की तुलना में तीन गुना ज्यादा होती है। भारत में सकल घरेलू उत्पाद में वृद्धिदर तेज़ रहने के बावजूद आय की असमानता पिछले एक दशक में बहुत बढ़ी है। कालाबाज़ारी के चलते करोड़ों रुपये का अनाज गोदामों में सड़ता रहता है वहीं भारत के 20 करोड़ से ज्यादा लोग बारह रुपये रोज़ से अपना गुज़ारा करने को विवश हैं। भूख और कुपोषण से त्रस्त भारतीय मौलिक स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित हैं। यूनिसेफ की हालिया रिपोर्ट के अनुसार "भारत में बच्चा पैदा होने के बाद हर सातवें मिनट में एक मां दम तोड़ देती है वहीं दूसरी ओर एशिया के कुल कुपोषित बच्चों में से 74 प्रतिशत भारत में हैं।" बच्चों की अस्वस्थता का प्रमुख कारण कुपोषण है। कुपोषण की वजह से बच्चे न्यूरो, ग्वाइटर, थाइरॉइड एवं सांस आदि से संबंधित बीमारियों की चपेट में आ रहे हैं। यूनीसेफ के अध्ययन के मुताबिक गर्भवती महिलाओं के कुपोषण की वजह से प्रसव पूर्व मृत्युदर एवं बाल मृत्यु दर की भारत में बहुत तेज़ी से वृद्धि हो रही है। भारत में बाल मृत्यु का एक प्रमुख कारण चिकित्सा सेवा में कमी है। ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूदा ढांचागत आधार के अनुसार कुल 70.2 प्रतिशत डॉक्टरों की कमी है। योजना आयोग की रिपोर्ट के अनुसार देश को अगले पांच वर्षों में लगभग दस लाख नर्सों की आवश्यकता होगी। स्वस्थ भारत के अधूरे स्वप्न का कारण सिर्फ़ चिकित्सा सेवा में कमी ही नहीं बल्कि महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति बरती जाने वाली मानसिकता है। भारतीय महिलाओं में साक्षरता की कमी है जिसके कारण वे बच्चों की तथा स्वयं की समस्याओं को समझने में असमर्थ होती हैं और यही कारण है जो मातृ एवं बाल मृत्यु को बढ़ावा देता है। आर्थिक असमानता, लैंगिक एवं जातिगत भेदभाव की मार शिक्षा पर भी पड़ी है। शिक्षा के बिना मानव विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जब बात लड़कियों की शिक्षा की हो तो इसका महत्व और भी बढ़ जाता है। परंतु भारत में बुनियादी ढांचे की कमी ने इस पर भी कुठाराघात किया है। एक गैर-सरकारी संगठन के देशव्यापी सर्वे से यह सच सामने आया है कि गांवों में लड़कियों को स्कूल न भेजने का कारण यह नहीं है कि माता-पिता उन्हें पढ़ाना नहीं चाहते, बल्कि यह है कि स्कूलों में लड़कियों के लिए शौचालय की व्यवस्था नहीं है। सिलसिला यहीं नहीं थमता। तीन वर्ष पूर्व 'नेशनल फ़ोकस ग्रुप ऑन प्रॉब्लम्स ऑफ शेड्यूल्ड कास्ट एंड शेड्यूल्य ट्राईब चिल्ड्रेन' ने अध्यापकों और अनुसूचित तबके के छात्रों के अंतर्संबंधों को उजागर किया था। रिपोर्ट के अनुसार, अनुसूचित जाति और जनजाति के छात्र-छात्राओं के बारे में अध्यापकों की न्यूनतम अपेक्षाएं होती हैं और झुग्गी बस्तियों में रहने वाले ग़रीब बच्चों के प्रति तो उनका अपमानजनक और उत्पीड़नकारी व्यवहार रहता है। अध्यापकों के मन में 'वंचित' और 'कमज़ोर' सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, भाषाओं और अंतर्निहित बौद्धिक अक्षमताओं के बारे में मुखर या मौन धारणाएं होती हैं। यूनिसेफ के सहयोग से दलित आर्थिक आंदोलन और नेशनल कैंपेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स ने मिलकर एक अध्ययन किया है। यह अध्ययन स्कूलों में दलित बच्चों की स्थिति का जायज़ा लेने के मकसद से किया गया। चार राज्यों में 94 स्कूलों के बच्चों का अध्ययन करने के पश्चात जो नतीज़े सामने आए उसने भारत की उस दुखद तस्वीर को उभार दिया जहां जातिगत आधार पर मानवता की सीमाओं को लांघकर विभेद किया जा रहा है। इसी भेदभाव की वजह से बड़ी संख्या में दलित बच्ची अपने आगे की पढ़ाई जारी नहीं रख पाते। हालात की बदहाली का आलम यह है कि मिड-डे मील में मिलने वाले भोजन में भी दलित छात्रों के साथ भेदभाव किया जा रहा है। वर्ष 2007 में 'कंट्रोलर एंड ऑडिटर जनरल ऑफ़ इंडिया' की एक विशेष रिपोर्ट ने प्रारंभिक शिक्षा में सामाजिक तौर पर उत्पीड़ित तबकों की ख़राब होती स्थिति को रेखांकित किया। यही नहीं रोज़गार पाने के लिए, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों को विभेद का सामना करना पड़ता है। कुछ समय पूर्व प्रकाशित संसदीय समिति की एक रिपोर्ट ने अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों के साथ केंद्रीय विद्यालयों व विश्वविद्यालयों में प्रवेश व रोज़गार को लेकर जातिगत भेदभाव की समस्या को रेखांकित किया था। शिक्षित भारत के प्रयास सिर्फ़ जातिगत भेदभाव के कारण ही बाधित नहीं हो रहे। लैंगिक विभेद ने भी इन प्रयासों पर कुठाराघात किया है। पुरुषप्रधान भारतीय समाज की सोच के मुताबिक लड़कियों के लिए शिक्षा का कोई औचित्य नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में लड़कों के 73 प्रतिशत के अनुपात में लड़कियों की साक्षरतादर मात्र 48 प्रतिशत है। प्राथमिक शिक्षा के साथ माध्यमिक शिक्षा चिंता का विषय बनी हुई है। वर्ष 2005-06 में लड़कियों के दाखिले का अनुपात लड़कों के 57.22 प्रतिशत की तुलना में 46.23 प्रतिशत ही था। कक्षा 1 से 10 में विद्यालयों की पढ़ाई छोड़ने वाले लड़कों के 68 प्रतिशत की तुलना लड़कियों का प्रतिशत में 73.7 है।

भारतीय समाज में बेहिसाब असमानताएं हैं और जब तक ये नहीं मिटेंगी तब तक देश का विकास सच्चे अर्थों में हो पाना संभव नहीं है। इस विभेद का मूल कारण सरकारी नीतियों का अभाव नहीं है अपितु अज्ञान, अंधविश्वास और परंपरा के नाम पर प्रभुत्व स्थापना की चाह है और इसे तभी दूर किया जा सकता है जब देश की आधी आबादी के प्रति व्यक्ति अपना नज़रिया बदले। "जब स्त्रियां आगे बढ़ती हैं तो परिवार आगे बढ़ते हैं, गांव आगे बढ़ते हैं और राष्ट्र भी अग्रसर होता है"– देश के सामाजिक-आर्थिक विकास की समूची अवधारणा का मूल आधार पंडित जवाहरलाल नेहरू के ये शब्द रहे हैं।

अब वह समय आ गया है कि भेद का दंश झेलते हर वर्ग को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना होगा तथा इसके साथ ही समाज के इस मूलभूत ढांचे में परिवर्तन लाने का प्रयास करना होगा जिसने 'सभी का समाज' अवधारणा को फलीभूत नहीं होने दिया है। ❑

(लेखिका दयानंद महाविद्यालय अजमेर के समाजशास्त्र विभाग में प्रवक्ता हैं
ई-मेल : saraswatritu@yahoo.co.in)

जम्मू-कश्मीर की विशेष स्थिति

संविधान के अनुच्छेद 370 द्वारा जम्मू-कश्मीर को विशेष स्थान प्रदान किया गया है। संविधान में कहा गया है कि जम्मू-कश्मीर से संबंधित प्रावधान अस्थायी हैं। संविधान में अनुच्छेद 370 को जोड़े जाने का मुख्य कारण यह था कि अक्तूबर 1947 में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कश्मीर के महाराजा को भारत के साथ 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ अक्सैशन' पर हस्ताक्षर करते समय कुछ आश्वासन दिया कि उनके अलग अस्तित्व को बनाए रखा जाएगा। इसप्रकार कश्मीर के मुसलमानों को जो अपने भविष्य को लेकर बहुत चिंतित थे आश्वस्त करने का प्रयास किया गया।

संविधान के अनुच्छेद 370(1) में प्रावधान किया गया कि इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी

(क) अनुच्छेद 238 में उपबंध जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में लागू नहीं होंगे।

(ख) उक्त राज्य के लिए कानून बनाने की संसद की शक्ति (i) संघ सूची और उन समवर्ती सूची के उन विषयों तक सीमित होगी जिनको राष्ट्रपति उस राज्य की सरकार से परामर्श करके उन विषयों को तत्स्थानी विषय घोषित कर दे जो भारत डोमिनियन में उस राज्य के अधिमिलन को शासित करने वाले अधिमिलन पत्र में ऐसे विषयों के रूप में विनिर्दिष्ट हैं जिनके संबंध में डोमिनियन विधान मंडल उस राज्य के लिए कानून बना सकता है; और (ii) उक्त सूचियों के उन अन्य विषयों तक सीमित होगी जो राष्ट्रपति, उस राज्य की सरकार की सहमति से आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे।

(ग) अनुच्छेद 1 तथा इस अनुच्छेद के उपबंध उस राज्य के संबंध में लागू होंगे।

(ङ) संविधान के ऐसे अन्य उपबंध ऐसे अपवादों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए, जो राष्ट्रपति आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करे, उस राज्य के संबंध में लागू होंगे।

संविधान यह भी प्रावधान करता है कि कोई भी ऐसा आदेश जो उन विषयों से संबंधित है जिनका उल्लेख 'इंस्ट्रुमेंट ऑफ अक्सैशन' में किया गया है। राज्य सरकार के साथ परामर्श के पश्चात ही जारी किया जाएगा।

अनुच्छेद 370 के अलावा संविधान में जम्मू-कश्मीर से संबंधित अनेक अन्य प्रावधान भी हैं। जम्मू-कश्मीर और भारत की संघीय सरकार से संबंधित कुछ विशेष प्रावधान इस प्रकार हैं :

- जम्मू-कश्मीर राज्य का अपना अलग संविधान है जिनका निर्माण राज्य सरकार द्वारा गठित संविधान सभा द्वारा किया गया।
- राज्य के क्षेत्र में वृद्धि अथवा कटौती या राज्य के नाम व सीमा में परिवर्तन संबंधी कोई भी विधेयक संसद में राज्य की विधान सभा की अनुमति के बिना प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।
- भारत के संविधान के वह प्रावधान जिसके अंतर्गत उन सब नागरिकों को (जोकि पाकिस्तान चले गए थे नागरिकता से वंचित कर दिया गया) जम्मू-कश्मीर राज्य के स्थायी निवासियों पर लागू नहीं होते। जम्मू-कश्मीर के वह नागरिक जो पाकिस्तान चले गए और फिर पुनर्स्थापित होने के उद्देश्य से परमिट लेकर वापस लौट आए, भारत के नागरिक स्वीकार कर लिए गए।
- कुछ अन्य मामलों में भी जम्मू-कश्मीर के स्थायी निवासियों को कुछ विशेष अधिकार प्रदान किए गए, जैसे राज्य में रोज़गार प्राप्त करना, अचल संपत्ति प्राप्त करना, बसना तथा राज्य द्वारा प्रदान की गई सहायता या छात्रवृत्ति व अन्य प्रकार की सहायता ग्रहण

करना।

- संविधान के भाग 4 तथा 4अ जो राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत व मौलिक कर्तव्यों से संबंधित हैं, जम्मू-कश्मीर पर लागू नहीं होते।
- जम्मू-कश्मीर के उच्च न्यायालय को बहुत ही सीमित शक्तियां प्राप्त हैं। यह किसी भी कानून को असंवैधानिक घोषित नहीं कर सकता। मौलिक अधिकारों को लागू करवाने के अतिरिक्त यह लेख या परमादेश जारी नहीं कर सकता।
- संसद जम्मू-कश्मीर राज्य के लिए केवल संघीय सूची में दिए गए विषयों पर कानून बना सकती है। राज्य सूची में दिए गए विषयों पर इस राज्य के लिए कानून नहीं बनाए जा सकते। 1963 तक सीमावर्ती सूची भी राज्य पर लागू नहीं थी।
- जम्मू-कश्मीर राज्य में शेष विषयों पर कानून बनाने का अधिकार राज्य के पास है, संघीय सरकार के पास नहीं।
- जम्मू-कश्मीर के निपटारे से संबंधित किसी भी मामले में केंद्र सरकार राज्य सरकार की अनुमति के बिना निर्णय नहीं ले सकती।
- संविधान में भाग 17 के प्रावधान जम्मू-कश्मीर राज्य पर केवल कुछ मामलों में ही लागू होते हैं जैसे– (i) केंद्रीय राजभाषा (ii) राज्यों के बीच तथा केंद्र व राज्यों के बीच पत्र व्यवहार की सरकारी भाषा; तथा (iii) सर्वोच्च न्यायालय में कार्यवाही की भाषा।
- आंतरिक गड़बड़ी अथवा उसकी संभावना के आधार पर की गई संकटकाल की घोषणा जम्मू-कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होती जब तक कि यह घोषणा (i) राज्य की सरकार के अनुरोध अथवा उसकी अनुमति से न की गई हो। (ii) यदि घोषणा सरकार की अनुमति या अनुरोध से नहीं की गई तो राष्ट्रपति बाद में इसे राज्य के अनुरोध पर या राज्य सरकार की अनुमति से इसे लागू कर सकता है।
- जब संकटकालीन घोषणा लागू हो चुकी हो तो अनुच्छेद 19 के अंतर्गत राज्य के कानून बनाने या कार्यकारिणी निर्णय लेने की शक्ति को सीमित नहीं किया जा सकता।
- संविधान की पांचवीं अनुसूची जो कि अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन तथा नियंत्रण से संबंधित है तथा छठी अनुसूची जो जनजातीय प्रशासन से संबंधित है जम्मू-कश्मीर राज्य पर लागू नहीं है।

यह ध्यान देने योग्य है कि जबसे संविधान लागू हुआ है जम्मू-कश्मीर राज्य की विशेष स्थिति में अनेक परिवर्तन किए गए हैं। दिसंबर 1964 में संविधान के अनुच्छेद 356 व 357 को जम्मू-कश्मीर राज्य पर लागू कर दिया गया और राष्ट्रपति को अधिकार प्रदान कर दिया गया कि राज्य की संवैधानिक मशीनरी के टूटने पर वह राज्य का शासन अपने हाथ में ले सकता है। अनुच्छेद 356 के अंतर्गत घोषित संकट के समय संसद को भी राज्य के लिए कानून बनाने का अधिकार प्रदान कर दिया गया। 1965 में जम्मू-कश्मीर राज्य के अध्यक्ष (सदरे-रियासत) को राज्यपाल के नाम से तथा राज्य सरकार के मुखिया (प्रधानमंत्री) को मुख्यमंत्री के नाम से संबोधित करने का निर्णय लिया गया।

देश के कुछ वर्गों द्वारा यह निरंतर मांग की जा रही है कि जम्मू-कश्मीर राज्य की विशेष स्थिति को समाप्त कर दिया जाए। परंतु भारत सरकार ने इस मांग का कड़ाई से विरोध किया है। इसके साथ ही केंद्र सरकार द्वारा हर संभव प्रयास किया गया है कि जम्मू-कश्मीर राज्य का भारत के संघ के साथ एकीकरण हो जाए।

जम्मू-कश्मीर का संविधान

जम्मू-कश्मीर भारतीय संघ का एकमात्र राज्य है जिसका अपना निजी संविधान है। इस संविधान का निर्माण एक संविधान सभा द्वारा किया गया जिसका गठन राज्य सरकार ने किया। यह संविधान 26 जनवरी, 1957 को लागू हुआ। जम्मू-कश्मीर राज्य के संविधान के मुख्य तत्व इस प्रकार हैं :

- संविधान राज्य की समस्त कार्यकारिणी शक्तियां राज्यपाल को प्रदान करता है जिसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। राज्यपाल एक संवैधानिक अध्यक्ष है तथा राज्य की मंत्री परिषद के परामर्श पर कार्य करता है। इस मंत्री परिषद का नेतृत्व मुख्यमंत्री करता है।
- मंत्री परिषद सामूहिक रूप से राज्य के विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी है।
- राज्य में द्वि-सदनीय विधान मंडल की व्यवस्था की गई है। विधानमंडल के दोनों सदनों को विधान सभा व विधान परिषद नाम प्रदान किए गए हैं। विधान सभा एक जनप्रिय सदन है जिसके 100 सदस्य हैं। इन सदस्यों का निर्वाचन जनता द्वारा सार्वजनिक वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है। विधान परिषद के कुल 36 सदस्य हैं जिनमें से 11को विधान तथा कश्मीर के लोगों से तथा 11को जम्मू के लोगों में से चुनती है। 6 सदस्य को नगर पालिकाओं, शिक्षा संस्थानों इत्यादि से चुना जाता है। शेष आठ सदस्यों को राज्यपाल मनोनीत करता है। राज्यपाल स्वयं भी विधान परिषद का भाग है।
- संविधान के अंतर्गत एक उच्च न्यायालय का प्रावधान किया गया जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा दो अथवा उससे अधिक न्यायाधीश होंगे। मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा भारत के मुख्य न्यायाधीश व राज्य के राज्यपाल से परामर्श के पश्चात की जाती है। जम्मू-कश्मीर के उच्च न्यायालय को आरंभिक तथा अपीलीय दोनों प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। उच्च न्यायालय एक अभिलेख न्यायालय है और इसे किसी भी व्यक्ति को न्यायालय का अपमान करने के लिए दंड देने का अधिकार है।
- यह उर्दू को राज्य की राजभाषा घोषित करता है परंतु अंग्रेज़ी को सरकारी काम के लिए प्रयोग करने की अनुमति देता है। यदि राज्य विधान सभा चाहे तो अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग को वर्जित भी कर सकती है। ❑

संविधान निर्माण के अगुआ राजेंद्र प्रसाद

● मृदुला सिन्हा

विश्व के सबसे बड़े गणतंत्र का संविधान निर्माण करना आसान काम नहीं था। क्योंकि भिन्न-भिन्न संप्रदाय, जातियां, भाषाएं, बोलियां और जीवन स्थितियों का देश रहा है भारत। विश्व की सबसे पुरानी जिसकी संस्कृति रही है तो आधुनिकतम हवाओं के लिए भी खिड़की-दरवाज़े खुले रहे हैं– "आनो भद्रा: क्रतवो यंतु विश्वत:।" *ऋग्वेद* का यह श्लोक कहता है कि अच्छे विचार चारों तरफ से आने चाहिए। लंबे स्वतंत्रता संघर्ष के उपरांत आज़ादी मिली थी। आज़ादी के उपरांत अपना संविधान होना आवश्यक था। और आवश्यक था एक ऐसा व्यक्ति जो देश-समाज की सारी विविधताओं का मान रखते हुए एक ऐसे संविधान का निर्माण करे जो सबके हित की बात करता हो और सबके अधिकारों का संरक्षण करते हुए देश में एक जन और एक राष्ट्र के उद्देश्य और भाव को प्रवाहित करता रहे। स्वतंत्रता आंदोलन के मंथन से निकले कई गणमान्य राष्ट्रभक्त राजनीतिक क्षितिज पर थे। परंतु डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी की बात ही अलग थी। शैक्षणिक जीवन में सदा प्रथम आने वाले राजेंद्र प्रसाद की सूझ-बूझ, प्रखर मेधा तो थी ही, भारत की आत्मा, गांवों की ज़रूरतों और जीवन व्यवहार की भी उन्हें पूरी जानकारी थी। भारतीय संस्कृति के कण-कण उनके व्यक्तित्व में समाहित थे। भारतीय समाज के एकता सूत्रों में वे स्वयं बंधे थे। वे राजनीतिक नहीं, सांस्कृतिक पुरुष थे, जिसमें प्रखर राजनीति भी समाहित थी। देशभक्ति का भाव संस्कृति का ही एक आयाम होता है।

राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद के दरभंगा आगमन पर दरभंगा नरेश कामेश्वर सिंह उनका स्वागत करते हुए

गांधीजी ने कहा था, "राजेंद्र बाबू के पवित्र चरित्र को पढ़कर कौन कृतार्थ नहीं होगा! कम-से-कम राजेंद्र बाबू एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें मैं ज़हर का प्याला दूं तो वह उसे नि:संकोच पी जाएंगे। राजेंद्र बाबू का त्याग हमारे देश के लिए गौरव की बात है। नेतृत्व के लिए इन्हीं के समान आचरण चाहिए। राजेंद्र बाबू का जैसा विनम्रतापूर्ण व्यवहार और स्वभाव है, वैसा कहीं भी, किसी भी नेता का नहीं है।"

संविधान सभा का मुखिया एक ऐसा व्यक्ति ही होना चाहिए था। समाज में साहित्य, शिक्षा और संस्कृति, ये तीनों व्यापक विषय होते हैं। इन तीनों के संबद्ध सूत्रों में ही किसी भी समाज की संस्कृति प्रवाहित होती है। इन्हीं तीनों में जाति, धर्म और देश समाहित होता है। किसी भी देश की उन्नति और गौरव इन्हीं पर

निर्भर करता है। शिक्षा व्यक्ति के जीवन में व्याप्त अंधकार को दूर कर जीवन में सामंजस्य स्थापित करती है और व्यक्तियों के माध्यम से समाज को आत्मनिर्भर बनाती है। शिक्षित समाज ही प्रगति के पथ पर आगे बढ़ता है। जहां तक संस्कृति का प्रश्न है, भारतीय संस्कृति इस मायने में भी अनोखी रही है कि यहां पुरातन काल से मानसिक स्वतंत्रता सदैव अबाधित रही है। आधुनिक संस्कृति पर अनेकानेक प्रकार के वादों का प्रभाव पड़ा है। बहुत से मत-मतांतर और विभिन्नता के बावजूद भारत में एकसूत्रता दिखाई पड़ती है।

ऐसे गणतंत्र का संविधान बनाने के लिए भारत की विविधता और एकता की पहचान जिस व्यक्ति में होनी चाहिए थी, वह थे डॉ. राजेंद्र प्रसाद। जिन्हें बाद में चलकर समाज ने देशरत्न की उपाधि दी। रत्न ही थे डॉ. राजेंद्र प्रसाद।

संपूर्ण जीवन राष्ट्र को समर्पित करने वाले डॉ. राजेंद्र प्रसाद तीन बार कांग्रेस अध्यक्ष तथा स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी नेता रहे। अंतरिम सरकार में खाद्य एवं कृषिमंत्री रहे।

20 जनवरी, 1947 को संविधान सभा की पहली बैठक हुई। कुल 296 सदस्यों में से 210 सदस्य उपस्थित हुए। 210 में 160 हिंदू थे, 33 परिगणित जातियों, 5 सिक्ख सदस्य, 6 देसी रियासतों के सदस्य, पिछड़ी जातियों के 5, एंग्लो इंडियन के 3, पारसी के 3 और मुसलमानों के 80 सदस्य थे। इन सदस्यों में से एक-एक, दो-दो सदस्य अनुपस्थित थे।

इसी बैठक में श्री सत्यनारायण सिन्हा ने स्टीयरिंग कमिटी के गठन का प्रस्ताव रखा जो सर्वसम्मति से स्वीकृति हुआ। अध्यक्ष महोदय ने उसी दिन शाम के 5 बजे तक प्रतिभागियों के नाम आ जाने का निर्णय सुनाया।

पुनः अध्यक्ष महोदय ने पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा संविधान के लक्ष्य से संबंधित प्रस्ताव पर लोगों के सुझाव मांगे जिसमें एस. राधाकृष्णन, एन.जी. रंगा, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित, प्रो. एन.जी. रंगा, श्री एस. नागथा, श्री जगत नारायण लाल, श्री अलग राय शास्त्री ने भाग लिया। डॉ. राधाकृष्णन ने अपने लंबे समर्थन वक्तव्य में देश की ऐतिहासिक गरिमा, तत्कालीन परिस्थिति, आवश्यकता और अंग्रेज़ों की मनसा पर प्रकाश डाला।

उनका स्पष्ट मत था, "हम उन सबसे जो इस असेंबली में नहीं आए हैं, यह कहना चाहते हैं कि हमारी इच्छा यह कभी भी नहीं है कि हम किसी वर्ग विशेष की सरकार स्थापित करें। हम यहां किसी जाति विशेष या किसी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के लिए कोई मांग करने नहीं आए हैं। हम यहां सभी भारतीयों के लिए स्वराज्य की स्थापना का कार्य कर रहे हैं। हम हर प्रकार के स्वेच्छाचारी शासन को और निर्जीव परंपरा की हर एक टूटी-फूटी चीज़ को ख़त्म करने का प्रयत्न करेंगे। हम यहां ऐसी व्यवस्था करने के लिए सम्मिलित हुए हैं जिससे इस देश के जनसाधारण की, चाहे वे किसी भी जाति, धर्म या संप्रदाय के हों, मौलिक आवश्यकताएं वास्तव में पूरी हो सकें।

मार्च 1959 में तिब्बत से स्वनिर्वासन के बाद राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद से पहली बार मुलाकात करते दलाई लामा। राष्ट्रपति अंगवस्त्र प्रदान कर दलाई लामा का स्वागत कर रहे हैं

"अब मैं अपने लक्ष्य के विषय में कहूंगा हम यह निश्चय करते हैं कि हिंदुस्तान स्वतंत्र सार्वभौम-संत्ता-संपन्न जनतंत्र होगा।"

भारत को कॉमनवेल्थ का सदस्य बनने के लिए ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली ने अपने पहले वक्तव्य में कहा था, "मैं आशा करता हूं कि भारतीय ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में रहने का निश्चय करेंगे। मुझे विश्वास है कि ऐसा करने में उन्हें बहुत लाभ दिखाई देगा लेकिन यदि वह ऐसा निश्चय करें तो यह स्वतंत्र इच्छा से होना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्य ब्रिटिश कॉमनवेल्थ के साथ किसी बाहरी दबाव में नहीं है। लेकिन इसके विपरीत यदि वह स्वतंत्र होने का निश्चय करे तो हमारे मत में उसे इसका अधिकार है।"

डॉ. राधाकृष्णन का उपर्युक्त वक्तव्य पर मत था, "आपने यह हमारी इच्छा पर छोड़ दिया कि हम ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में रहें या न रहें। हम ब्रिटिश कॉमनवेल्थ में न रहने का निश्चय कर रहे हैं। क्या मैं इसका कारण बता सकता हूं? जहां तक हिंदुस्तान का संबंध है यह ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, कनाडा या दक्षिणी अफ्रीका की तरह सिर्फ़ उपनिवेश नहीं है। इनका ग्रेट ब्रिटेन से जातीय, धार्मिक और सांस्कृतिक संबंध है। हिंदुस्तान की जनसंख्या विशाल है और इसके विपुल प्राकृतिक साधन हैं। इसकी एक सांस्कृतिक परंपरा रही है और सुदीर्घ काल तक इसने स्वतंत्र जीवन व्यतीत किया है। इसलिए इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि हिंदुस्तान दूसरे उपनिवेशों की तरह एक उपनिवेश है।"

उन्होंने पंडित जवाहरलाल द्वारा प्रस्तावित लक्ष्य स्वरूप के अन्य बिंदुओं पर भी अपने विचार रखे। श्री एन.वी. गाडगिल ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा, "यह तो स्पष्ट है महाशय कि यह असेंबली न केवल शासन का स्वरूप विकसित करने के लिए है बल्कि उसके विवरण को भी तैयार कर देने के लिए है। मैं यहां यह कह देना चाहता हूं कि हम यहां विधान का मसविदा बनाने या तर्क़-वितर्क़ करने के लिए नहीं हैं। वास्तव में हम यहां कार्यकारिणी के रूप में इक्ट्ठा हुए हैं और विधान-परिषद की यह सभा स्वतंत्रता के संघर्ष की एक मंजिल है। शायद यह अंतिम से पहले का या अंतिम संघर्ष होगा जिसके साथ इस स्वातंत्र्य-युद्ध का अंत होगा जो गत 75 वर्ष या उससे अधिक से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चल रहा है। हमारे पूर्ववर्ती लोगों ने हमें संघर्ष की परंपरा सौंपी है।"

उन्होंने आगे कहा, "वास्तव में यह (संविधान) एक नींव है। लोगों को मालूम हो जाएगा कि उन्हें क्या मिलने वाला है। यह ऐसा विधान होगा जो उन नागरिकों में वफ़ादारी की भावना जाग्रत करेगा, जिन पर वह लागू किया

जाने वाला है। क्योंकि जब तक कोई विधान नागरिकों को अपने प्राण देकर भी अपने अधिकारों की रक्षा करने के लिए प्रेरणा नहीं प्रदान करता तब तक वह उनकी वफ़ादारी नहीं प्राप्त कर सकता।"

श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित ने तो प्रस्ताव पर बोलते हुए स्पष्ट कहा "हमारे सामने जो प्रस्ताव रखा गया है वह पूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर ज़ोर देता है और प्रत्येक वैध दल को भी पूर्ण स्वतंत्रता का आश्वासन देता है। इसलिए उसमें अल्पसंख्यकों के भय करने का कोई कारण नहीं है। यद्यपि कुछ अल्पसंख्यकों को विशेष हित-रक्षा की आवश्यकता है, पर उन्हें भूलना नहीं चाहिए कि वे एक पूरे राष्ट्र के अंग हैं और यदि बड़ी वस्तु को नुक़सान पहुंचता है तो उसके अंग- अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा का सवाल ही नहीं उठ सकता। स्वतंत्र भारत में अल्पसंख्यकों को बाहरी शक्ति का मुंह नहीं ताकना पड़ेगा और वे ऐसी मदद ढूंढेंगे तो उन्हें कोई 'धोख़ेबाज' कहे बिना नहीं रहेगा।"

उन्होंने आगे कहा, "इधर कई वर्षों से हम अधिकार की बातें बहुत कर रहे हैं और कर्तव्य की कम। किसी भी समस्या का इस तरह का समाधान करना दुर्भाग्य की बात होती है। हमारे सामने जो प्रस्ताव है वह ऐसी समस्याओं से संबंध रखता है जो हम सभी के लिए बुनियादी है और हम किसी विशेष वर्ग की रक्षा उसी हद तक कर सकते हैं जिस हद तक कि ये समस्याएं हल हों। प्रस्ताव में स्पष्ट कहा गया है कि स्वतंत्र भारत में व्यक्ति और समूह को पूरी समाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता होगी और हम अपने जीवन के नमूने के द्वारा अन्य राष्ट्रों के सामने आदर्श रख सकेंगे। ऐसी दशा में हमारे अपने जीवन का नमूना दुरुस्त होना चाहिए और वह पूरे देश के सहयोग और उसकी शक्ति के द्वारा निश्चित होना चाहिए।"

तीन वर्षों तक विभिन्न उपसमितियां बनाकर विदेश में बने संविधान को देख-परखकर (संविधान से) सामग्रियां इकट्ठा की गईं। अंतिम बैठक 24 जनवरी, 1950 को हुई, जिसमें संविधान पर हस्ताक्षर और राष्ट्रपति का चयन भी हुआ। डॉ. राजेंद्र प्रसाद का एक ही नाम राष्ट्रपति पद के लिए आया था। अध्यक्ष ने राष्ट्रपति चयन की प्रक्रिया प्रारंभ करने के पूर्व राष्ट्रगान के संबंध में अपना वक्तव्य दिया "जिस गान के शब्द तथा स्वर 'जन-गण-मन' के नाम से विख्यात हैं वह भारत का राष्ट्रगान है किंतु उसके शब्दों में सरकार की आज्ञा से यथोचित अवसर पर हेर-फेर किया जा सकता है।"

निर्वाचन अधिकारी तथा संविधान सभा के सचिव एच. वी. आर. अयंगार ने कहा, "अध्यक्ष महोदय मुझे माननीय सदस्यों को यह सूचित करना है कि भारत के राष्ट्रपति पद के लिए केवल एक मनोनयन पत्र प्राप्त हुआ है। उम्मीदवार का नाम डॉ. राजेंद्र प्रसाद है। उनका नाम पंडित जवाहरलाल नेहरू ने प्रस्तावित किया है और उसका समर्थन सरदार वल्लभभाई पटेल ने किया। राष्ट्रपति के निर्वाचन संबंधी नियमों के नियम 8 के उपनियम (1) के अधीन मैं घोषित करता हूं कि भारत के राष्ट्रपति पद के लिए डॉ. राजेंद्र प्रसाद नियमानुसार निर्वाचित किए गए।"

इस अवसर पर सर्वप्रथम पंडित जी ने अपने उद्गार व्यक्त किए, "हममें से बहुत लोगों को आप पिछले तैंतीस वर्षों में स्वातंत्र्य संग्राम के मोर्चे पर डटे रहने वाले भारतीय सैनिक के रूप में भी अपना परिचय दे चुके थे। श्रीमान हम आपको अपना नेता समझकर, भारतीय गणराज्य का प्रधान समझ कर तथा एक ऐसा सखा समझ कर आप का स्वागत करते हैं जिन्होंने पिछली पीढ़ी में इस देश के संकटों तथा कष्टों का अडिग होकर सामना किया है। इस सभा ने आज एक कार्य संपन्न कर दिया है और अब इस सभा का अस्तित्व नहीं रहेगा, अथवा यों कहिए कि इसका स्वरूप बदल जाएगा और अब यह भारतीय गणराज्य की संसद का रूप धारण कर लेगी। बहुत पहले से हमारे ऊपर जिसका भार था उसे आज हमने पूरा कर दिया है। अब हमें अन्य कार्यों को पूरा करना है। जिस स्वप्न को हम वर्षों से देखते आ रहे थे वह आज पूरा करना है और उन्हें पूरा करने के लिए अभी तक जितना परिश्रम किया गया है उससे कहीं अधिक परिश्रम करना है। श्रीमान, इस गणराज्य के प्रति, जिसके आप सम्मानित राष्ट्रपति होंगे, मैं अपनी वफ़ादारी तथा सत्यनिष्ठा प्रकट करता हूं।"

सरदार वल्लभभाई पटेल के शब्दों में "माननीय प्रधानमंत्री महोदय ने जो शब्द कहे हैं उनमें से प्रत्येक का मैं समर्थन करता हूं और आप को जो ऊंचा सम्मान प्रदान किया गया है उसके लिए आप को बधाई देता हूं। तीन वर्ष से आप संविधान सभा के अध्यक्ष की हैसियत से काम करते रहे हैं और सदस्यों ने देखा है कि आपने इस सभा के कार्य का संचालन किस प्रकार किया है। भारत के इतिहास में आज का दिवस बहुत ही शुभ है। हमें इस में जरा भी संदेह नहीं है कि आप के बुद्धिबल, शांत स्वभाव तथा सुंदर व्यवहार के फलस्वरूप इस देश का मान बढ़ेगा तथा देश संसार के राष्ट्रों के बीच एक सम्मानित पद प्राप्त करेगा।"

सभा में उपस्थित भद्र जनों द्वारा अपनी प्रशंसा सुनना अत्यंत सरल, सहज और अनौपचारिक संबंध रखने वाले डॉ. राजेंद्र प्रसाद जी के लिए स्वाभाविक नहीं था। उन्होंने कहा "श्री दास के बोलने के पूर्व सदस्यों से निवेदन करना चाहता हूं कि इस प्रकार के अवसर पर यहां बैठ कर ऐसी भावनाओं से परिपूर्ण भाषणों को सुन कर, जिनके योग्य मैं नहीं हूं, मुझे संकोच का ही अनुभव हो रहा है। इसलिए मैं सदस्यों से प्रार्थना करता हूं कि यदि बोलना ही चाहते हैं तो वे कुछ वाक्य कह कर ही संतोष कर लें। माननीय सदस्यों से मेरा अनुरोध है कि अब वे बहस बंद करें और मुझे अधिक लज्जित न करें। मेरा हमेशा यही विचार रहा है कि बधाई उस अवसर पर नहीं दी जानी चाहिए जब कोई व्यक्ति पद पर नियुक्त किया जाता है, बल्कि उस अवसर पर दी जानी चाहिए जब वह अपनी सेवा से निवृत्त होता है।"

स्पष्टवादी और आडंबरहीन व्यक्तित्व के धनी थे राजेंद्र बाबू। बारह वर्षों तक राष्ट्रपति पद पर आसीन रहे। उन्होंने संविधान सभा के अध्यक्ष के नाते जिन मूल्यों को ध्यान में रखकर संविधान का निर्माण किया था, उन्होंने राष्ट्रपति पद पर आसीन रहकर तदनुकूल कार्य भी किए। देश और समाज हित में जो विधान अनुचित होता, उसे उन्होंने बिना अपने हस्ताक्षर के संसद को पुनर्विचार के लिए लौटाया। उनमें 'हिंदू कोड बिल' प्रमुख था। वे हिंदुस्तानी थे, इंडियन नहीं। इसलिए हिंदुस्तान हित की बात सोचते और करते थे। वे सरकार के रबर स्टैंप नहीं बने। राजेंद्र बाबू जो थे। अनूठे, अनोखे भारत के इतिहास में गौरवमय भूमिका निभाती मिट्टी में जन्मे राजेंद्र बाबू का शिक्षा से लेकर देशसेवा, देशसेवा से संविधान निर्माण और राष्ट्रपति के रूप में, सर्वत्र अगुआ रहना, हमारे लिए गौरव की बात है। ❑

(लेखिका साहित्यकार एवं पांचवां स्तंभ **नामक पत्रिका की संपादक हैं।**

ई-मेल : sumridula@yahoo.co.in)

मेरीन इंजन और रिवर्सिबल रिडक्शन गीयर

● बी. मोहनलाल

अलेप्पी के मछुआरों को अक्सर मछली पकड़ने के काम में आने वाली अपनी नौकाओं को लेकर मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। डीज़ल इंजन वाली नौकाओं में पीछे एक लंबा प्रोपेलर होता है जिसमें गीयर बॉक्स नहीं होता। इस कारण उन्हें इसे इधर से उधर घुमाने में समस्या होती थी। मिट्टी के तेल से चलने वाले इंजन से लैस इन नावों में ईंधन की खपत ज्यादा होती थी जिसके कारण पानी प्रदूषित होता है। इससे पानी के जीव-जंतु प्रभावित होते हैं। इसके अलावा डीज़ल इंजन वाली नौकाओं को तट पर किनारे लाना भी मुश्किल होता है। एक स्थानीय निवासी मोहनलाल ने इस कठिनाई को महसूस किया और इस संबंध में कुछ करने का निश्चय किया। काफी अनुसंधान के बाद उन्होंने एक गीयरबॉक्स विकसित किया और एक जेड-ड्राइव सिस्टम बनाया जिसे हाथ से झुकाया जा सकता है। इसके इस्तेमाल से कम क्षमता वाले डीज़ल इंजनों की यह समस्या सुलझ गई।

मोहनलाल एक होशियार नौका मिस्त्री और टेक्निशियन हैं जिन्हें समुद्री नौकाओं के इंजन ठीक करने का तीन दशक से ज्यादा का अनुभव है। वह मछुआरों की नावों के लिए ड्राइव और एसेंबली भी बनाते हैं।

बचपन से ही मोहनलाल ने मछुआरों की नावें सुधारने की कला सीखी थी। वह पांच वर्ष के थे जब वह अपने चाचा की वर्कशॉप में काम करने लगे थे। इसके बाद वह मुंबई चले गए वहां उन्होंने कई साल तक डाई (सांचा) बनाने की एक फैक्टरी में काम किया। इसके बाद उन्होंने खाड़ी क्षेत्र में जाकर माज्दा के एक कार बेचने के केंद्र में आठ वर्ष काम किया। यहां पर उन्होंने लेथ ऑपरेटर और मिस्त्री के रूप में अनुभव प्राप्त किया। इसके बाद वह केरल लौटे। सन् 1987 में उन्होंने अलापुझा में 'कावेरी इंजिनियरिंग वर्क्स' नाम से अपनी वर्कशॉप शुरू कर दी। इसमें वह नौकाओं के ड्राइव और इंजन की मरम्मत करने लगे। उन्होंने ट्रॉलिंग बोर्डों की मरम्मत का भी काम शुरू कर दिया। इन बोर्डों का इस्तेमाल मछलीमार नावों में समुद्र के अंदर जाल खोलने और फैलाने में किया जाता है।

मोहनलाल ने अपना ट्रॉलिंग बोर्ड का व्यापार बहुत छोटे पैमाने पर शुरू किया। उन्होंने इसका विस्तार किया और नयी नाव यामहा इंजन सहित तीस हज़ार रुपये में खरीद ली। यह मिट्टी के तेल से चलती थी और इसमें रोज़ाना 30 लीटर ईंधन ख़र्च होता था। कुछ ही लीटर मिट्टी का तेल सब्सिडी वाली दर पर मिलता है (खुले बाज़ार में इसकी कीमत 60 रुपये प्रति कैन है)। उन्होंने दो महीने तक होने वाले लाभ की समीक्षा की और देखा कि ईंधन की ज्यादा क़ीमत के चलते लाभ कम होता है। इसके अलावा नाव पर काफी मात्रा में ईंधन लादकर जाना होता है जिससे नौका पर बोझ बढ़ जाता है। यह उनका ही नहीं बल्कि सारे मछुआरों का अनुभव था। नावों से निकलने वाले धुएं से पानी प्रदूषित होता था। इसका दुष्परिणाम मछलियों पर भी पड़ता था। कुछ महीनों बाद उन्होंने यह काम बंद करने का फ़ैसला किया। उन्होंने मिट्टी के तेल वाले

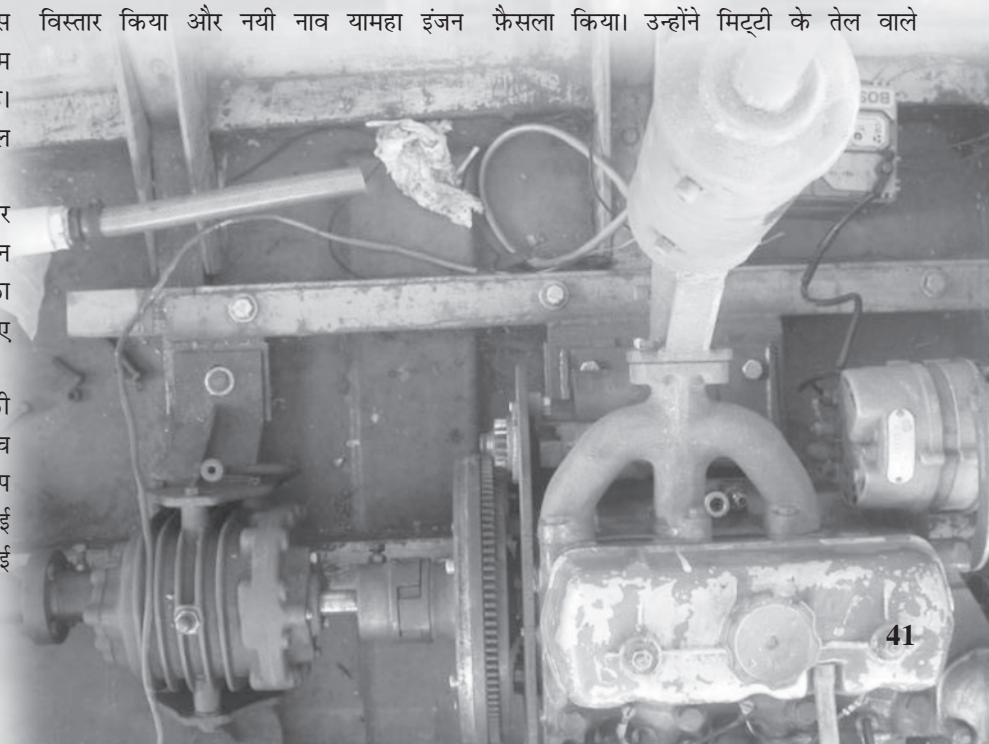

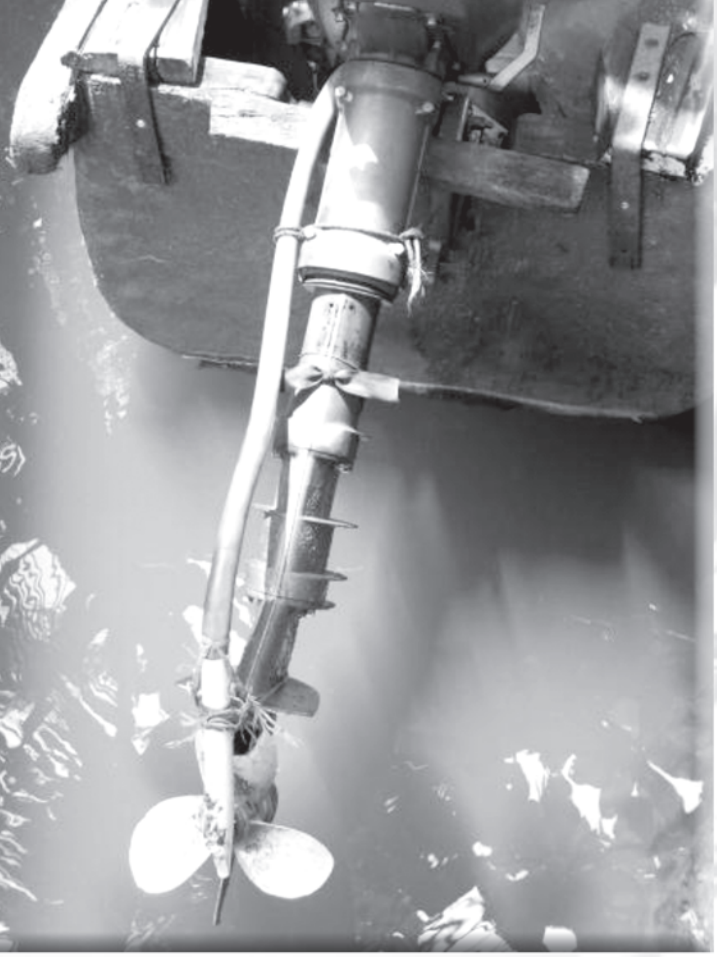

इंजन के विकल्प के बारे में भी सोचना शुरू कर दिया।

अन्य उपलब्ध विकल्पों में भी अनेक खामियां थीं। डीज़ल इंजन में ज्यादा इधर-उधर घुमाने की क्षमता नहीं थी। उसका गीयर बॉक्स भी बहुत अच्छा नहीं था। अन्य गीयर बॉक्स जो बाज़ार में उपलब्ध थे वे माफ़िक नहीं आ रहे थे। गीयर बॉक्स न होने से अक्सर नाव का प्रोपेलर सीधे डीज़ल इंजन से जुड़ जाता था जिससे नौका को संभालना और भी मुश्किल और ख़तरनाक हो जाता था।

इसके बाद मोहनलाल ने मछलीमार नावों के लिए विशेष गीयर बॉक्स बनाने का फ़ैसला किया। उन्होंने एक डीज़ल इंजन के विकास का काम शुरू किया। उन्होंने इंजन का वजन 83 किलोग्राम से घटाकर 63 किलोग्राम कर दिया और एल्युमिनियम पुर्ज़ों के इस्तेमाल से इसे 30 किलोग्राम से भी कम करने में सफलता पाई। सांचों और पुर्ज़ों के पैटर्न बनवाने पर आई अधिक लागत के कारण उनकी विकास लागत बढ़ गई। इसके बाद उन्होंने नौका के कामकाज पर ध्यान दिया और इसकी रफ़्तार बढ़ाकर 18 किमी प्रति घंटे करने में सफल हुए। उन्होंने इसमें क्लच और दो गीयर जोड़े। एक गीयर आगे बढ़ाने और दूसरा पीछे जाने के लिए था। नौका में एक्जॉस्ट पाइप भी जोड़ा।

उनके इस नवाचारी विकास की ख़बर जब अख़बारों में छपी तो केरल राज्य औद्योगिक निगम के निदेशक पी.एच. कुरियन ने उन्हें इसके लाभ स्पष्ट करने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने इस आविष्कार में राज्य मछली उद्योग के लिए संभावनाएं देखीं और इस शर्त पर तीन लाख रुपये का ऋण देना मंजूर किया कि अगर परियोजना सफल होती है तो वह यह ऋण विभाग को लौटा देंगे। मोहनलाल ने उत्साह के साथ अपने परीक्षण का काम जारी रखा। अनेक फील्ड परीक्षण पूरे किए गए और आने वाली मुश्किलों को दूर किया। उन्होंने अपने नवाचार का प्रदर्शन करने के लिए कई नौका-प्रदर्शनियों में भाग लिया। इससे उन्हें अपने आविष्कार में सुधार करने में मदद मिली।

इस इंजन की संभावनाओं को देखते हुए एक जाने-माने इंजन निर्माता ने उन्हें 100 इंजन आपूर्ति करने का आदेश दिया। यह आदेश उन्हें कोयंबटूर के एल्जी इक्विपमेंट्स ने सुनामी प्रभावित क्षेत्रों में राहत कार्यों के लिए दिया। समर्पित उत्पादन तंत्र न होने के कारण यह ऑर्डर समय पर पूरा नहीं किया जा सका।

इस बीच केरल सरकार द्वारा स्थापित 'मत्स्यफेड' नामक मछुआरों के कल्याण के लिए काम करने वाली सोसाइटी ने उनके द्वारा तैयार गीयर बॉक्स में रुचि दिखाई। उन्होंने इसके परीक्षणों और विपणन में मदद करने का फ़ैसला किया। मोहनलाल ने एनआईएफ को भी आवेदन दिया था। अतः उन्हें इसके डाक्यूमेंटेशन, पेटेंट कराने आदि में भी वित्तीय सहायता मिल गई। एनआईएफ ने कोयंबटूर के लक्ष्मी मशीन वर्क्स द्वारा डिज़ाइन और निर्मित किए गए गीयर के लिए भी सहायता दी।

अगले दौर के परीक्षणों में प्रोपेलर को नुक़सान होने और किनारे आने की समस्याएं भी सामने आईं। मोहनलाल ने इस समस्याओं से निपटने के लिए जेड ड्राइव विकसित किया।

गीयर बॉक्स का विकास 12 हार्सपावर के इंजन के लिए किया गया। इसकी आइडलिंग स्पीड 2400 राउंड प्रतिमिनट है। इसकी टंकी में 12 लीटर ईंधन आता है। डीज़ल इंजन फ्लैंज कपलिंग के ज़रिये इंजन फ्लाईव्हील से दो गीयरों के द्वारा सीधे जुड़ जाता है। यह आराम से चलता है और इसका पावर ट्रांसमिशन बेहतर है तथा पानी के डीज़ल इंजनों के लिए उपयुक्त है।

डीज़ल इंजन के साथ इसकी जेड ड्राइव प्रणाली और गीयर बॉक्स की खास बात यह है कि इसे हाथ से झुकाया जा सकता है और यह किनारे आते समय 90 डिग्री पर लॉक किया जा सकता है।

इसके ज़रिये इंजन की ताक़त भी घटाई जा सकती है जिससे नाव आराम से चलती है और उसे संभालना आसान हो जाता है।

अपने इस नये आविष्कार के लिए मोहनलाल ने तृणमूल स्तर के नवाचार के लिए एनआईएफ की पांचवीं राष्ट्रीय द्विवार्षिक प्रतियोगिता में राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया। नवंबर 2009 में आईएआरआई पूसा, नयी दिल्ली में आयोजित समारोह में यह पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्हें यह पुरस्कार राष्ट्रपति प्रतिभा देवीसिंह पाटिल के हाथों ग्रहण करने का सौभाग्य मिला।

एनआईएफ की सहायता से इस नवाचारी ने केरल राज्य सहकारी संघ के साथ फिशरीज डेवलपमेंट लिमिटेड के लिए एक समझौते पर हस्ताक्षर किए जिसके अनुसार इस आविष्कार को व्यापारिक उद्देश्य के लिए इस्तेमाल किया जाएगा। मत्स्यफेड ने अब इस प्रणाली को केरल के विभिन्न बंदरगाहों और तटीय इलाकों में प्रदर्शित करने का कार्यक्रम बनाया है। इससे मछुआरे खुद इस प्रणाली को देखकर अनुभव से फ़ायदा उठा सकेंगे। एनआईएफ ने इस नवाचारी का साउथ इंडिया फिशरीज फेडरेशन (एसआईएफएफ) से भी संपर्क कराया है ताकि इस प्रौद्योगिकी को प्रोत्साहन मिल सके। उम्मीद है कि इससे अच्छे नतीज़े सामने आएंगे ❑

जलवायु परिवर्तन : कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

● सुरेश अवस्थी

डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में दिसंबर के मध्य में हुए संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन के बाद समूचे विश्व में जलवायु परिवर्तन के संबंध में बहस तेज़ हो गई है। दरअसल, 1980 के दशक के अंत में इसे लेकर विश्वभर में चिंता बढ़ी। 1992 में ब्राज़ील के रियो डि जिनेरो में एक पृथ्वी सम्मेलन हुआ और धरती को बचाने की कवायद में तेज़ी आने लगी। इसी सम्मेलन में जलवायु परिवर्तन पर यूएन फ्रेमवर्क बनाया गया। इसी में औद्योगिक देशों को वैश्विक तपन के मौजूदा स्वरूप के लिए जिम्मेदार मानते हुए ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन पर रोक लगाने की बात की गई। इसके बाद 1997 में जापान के क्योटो में हुए सम्मेलन में 40 औद्योगिक देशों के लिए 1990 के स्तर के आधार पर ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के मानक तय किए गए। तत्पश्चात दिसंबर 2004 में कार्बन व्यवसाय को लेकर डरबन सम्मेलन तथा फरवरी 2005 में पुन: क्योटो प्रोटोकॉल को अंतिम रूप देते हुए 2012 तक 1990 के स्तर पर कार्बन डाई-ऑक्साइड उत्सर्जन लाने की सहमति बनी। इसी संदर्भ में 2007 में बाली (इंडोनेशिया) में हुए सम्मेलन में विकसित देशों पर जिम्मेदारी डाली गई, क्योंकि मात्र 20 प्रतिशत संख्या वाले ये देश 80 प्रतिशत कार्बन डाई-ऑक्साइड का उत्सर्जन करते हैं।

वैश्विक तपन अर्थात वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का विस्तार। कार्बन डाई-ऑक्साइड, मिथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, ओज़ोन जैसी 6 गैसों को ग्रीन हाउस गैस कहा जाता है। इनमें से कार्बन डाई-ऑक्साइड पर्यावरण के लिए सबसे अधिक ख़तरनाक है। इन गैसों के उत्सर्जन से धरती का तापमान बढ़ रहा है। इसे ही ग्लोबल वार्मिंग अथवा वैश्विक तपन कहा जाता है। इसके कारण उत्पन्न प्रमुख समस्याएं इस प्रकार हैं :

- **ओज़ोन परत में छिद्र :** धरती के वातावरण में मौजूद ओज़ोन की परत हमें सूर्य से निकलने वाली पराबैंगनी किरणों से बचाती है। परंतु हवाई ईंधन और रेफ्रिजरेशन उद्योग से उत्सर्जित होने वाली सीएफसी (क्लोरोफ्लोरो कार्बन) गैस से धरती के वातावरण में विद्यमान ओज़ोन की सुरक्षा छतरी में छिद्र हो गए हैं।
- **समुद्र स्तर में वृद्धि :** वैश्विक तपन के फलस्वरूप हिम (ग्लेशियर) पिघल रहे हैं जिसके कारण समुद्र के जलस्तर में तेज़ी से वृद्धि हो रही है। आशंका है कि इससे कुछ वर्षों में मालदीव जैसे द्वीपीय देश दुनिया के नक्शे से लुप्त हो जाएंगे।
- **भू-जल का विषैला होना :** समुद्र का जलस्तर बढ़ने से तटवर्ती क्षेत्रों के भू-जल के खारा होने का ख़तरा बढ़ गया है। समुद्र के तटीय इलाक़ों में पेयजल और निस्तारी जल की समस्या शुरू हो सकती है।
- **ध्रुवों की बर्फ़ का पिघलना :** वैश्विक तपन के कारण पृथ्वी के ध्रुवों की बर्फ़ पिघल रही है। इससे समुद्र के जलस्तर में वृद्धि हो रही है। इसके साथ ध्रुवीय भालू (पोलर बियर) जैसे जीवों का अस्तित्व ख़तरे में पड़ गया है।
- **वन क्षेत्रों का सिकुड़ना :** बदलते मौसम, औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण जंगलों की कटाई से वन क्षेत्र काफी सीमित होता जा रहा है। आशंका है कि अगले दो दशकों में केवल 10 प्रतिशत वन ही बचेंगे।
- **लुप्तप्राय जीव :** उपर्युक्त समस्याओं के कारण धरती पर जैव-विविधता संकीर्ण होती जा रही है। अंदेशा है कि वैश्विक तपन के दुष्प्रभाव से धरती पर विद्यमान पौधों की 56 हजार प्रजातियों और जीवों की 37,000 नस्लें लुप्तप्राय होती जा रही हैं।

क्या है कार्बन ट्रेडिंग?

क्योटो प्रोटोकॉल में प्रदूषण कम करने के दो तरीक़े सुझाए गए थे। इस कमी को कार्बन क्रेडिट की इकाई में मापा जाना था। एक कार्बन यूनिट एक टन कार्बन के बराबर है। पहला तरीक़ा जो सुझाया गया था, उसके अनुसार अमीर देश स्वच्छ विकास तंत्र में निवेश करें अथवा बाज़ार से कार्बन क्रेडिट खरीद लें। अर्थात यदि विकसित देशों की कंपनियां स्वयं ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी न ला सकें तो वे विकासशील देशों से कार्बन क्रेडिट खरीद लें। चूंकि भारत और चीन जैसे देशों में इन गैसों का उत्सर्जन कम होता है, इसलिए यहां कार्बन क्रेडिट का बाज़ार काफी बड़ा है। कार्बन क्रेडिट कमाने के लिए कंपनियां ऐसी परियोजनाएं लगाती हैं जिनसे वायुमंडल की कार्बन डाई-ऑक्साइड में कमी आए या फिर स्वच्छ विकास तंत्र के उपयोग से कम से कम कार्बनिक गैस का उत्सर्जन हो। इसके तहत वृक्षारोपण, कचरे से ऊर्जा उत्पादन, ठोस कचरा प्रबंधन, जल प्रबंधन और नवीकरणीय/अक्षय ऊर्जा परियोजनाओं, जैव ईंधन, सौर ऊर्जा का उत्पादन आदि शामिल हैं।

क्या है क्योटो प्रोटोकॉल?

क्योटो प्रोटोकॉल के तहत 40 औद्योगिक देशों को अलग सूची एनेक्स-1 में रखा गया है। ये देश 2012 के लिए निर्धारित लक्ष्य से काफी दूर हैं जिसके कारण वैश्विक तपन में वृद्धि हो रही है। अन्य देश चाहते हैं कि एनेक्स-1 के देश अपने उत्सर्जन में तेज़ी से कटौती करें। उनसे उम्मीद की जाती है कि वे 2012 तक अपने उत्सर्जन में 5.2 प्रतिशत की कटौती (1990 के स्तर से) करें। एनेक्स-1 का कोई भी देश इतनी भारी मात्रा में कटौती

करने का इच्छुक नहीं है। एनेक्स-1 देशों के लिए ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी करना बाध्यकारी है। इसके अलावा विकासशील देशों की सहायता के लिए एक कोष बनाने की बात भी कही गई है। प्रोटोकॉल के लक्ष्यों को पूरा करने पर कार्बन क्रेडिट दिए जाने की व्यवस्था भी प्रोटोकॉल में की गई है। अमरीका विश्व का सबसे बडा ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जक देश है। उसने क्योटो प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर तो किए हैं परंतु उसकी पुष्टि अभी तक नहीं की है। इसलिए एनेक्स-1 में होने के बावजूद उसने कोई लक्ष्य उत्सर्जन में कमी लाने के लिए नहीं रखा है।

क्या है मौजूदा विवाद?

एनेक्स-1 में शामिल अधिकतर देश 2012 तक के लिए निर्धारित लक्ष्य से अभी कोसों दूर हैं। उनसे अपेक्षा की जाती है कि संकल्पित अवधि के द्वितीय चरण (अभी यह परिभाषित नहीं है। यह अवधि 2012-17 अथवा 2012-2020 कोई भी तय की जा सकती है) में तेज़ी से भारी कटौती करेंगे। अपेक्षा है कि एनेक्स-1 देश 2020 तक अपने उत्सर्जन में 1990 के स्तर की तुलना में 40 प्रतिशत की कमी लाएंगे। परंतु इनमें से कोई भी देश इसके लिए तैयार नहीं है। यूरोपीय संघ ने अवश्य 2020 तक 20 प्रतिशत कटौती करने की पेशकश की है और यदि अन्य देश भी इसी प्रकार की प्रतिबद्धता दिखाते हैं तो वह 30 प्रतिशत तक कटौती करने को तैयार है। हाल ही में (नवंबर 2009) चीन ने 2020 तक 2005 के स्तर पर 40-45 प्रतिशत की कटौती का प्रस्ताव रखा है। भारत और चीन एनेक्स-1 में नहीं आते। परंतु उनकी बढ़ती विकास दर को देखते हुए विकसित देश उन पर भी बाध्यकारी शर्तें थोपने के हिमायती हैं।

भारत में कितना उत्सर्जन होता है?

भारत में कुल 1.8 अरब टन ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन होता है। इसमें से अकेले कार्बन डाई-ऑक्साइड की मात्रा 1.3 अरब टन है। प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन 1.8 टन के लगभग है। तुलनात्मक दृष्टि से अमरीका में 6 अरब टन का उत्सर्जन होता है जो प्रतिव्यक्ति 20 टन से अधिक है। विश्व औसत 4.5 टन प्रतिव्यक्ति है। एनेक्स-1 देशों का औसत प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन 12 टन है।

भारत की स्थिति

भारत का दृष्टिकोण दो सिद्धांतों पर आधारित है। पहला, भारत का मानना है कि वायुमंडल में ग्रीन हाउस गैसों का जो भंडार है वह पिछले 150-200 वर्षों में जमा हुई है और उसके लिए एनेक्स-1 के देश ही उत्तरदायी हैं। अत: उत्सर्जन में कटौती भी उन्हीं को करनी चाहिए। दूसरा, संयुक्त राष्ट्र कांफ्रेंस ऑफ पार्टीज़ (यूएनएफसीसीसी) ने समानता के सिद्धांत पर भी ज़ोर दिया है जिसके अनुसार विश्व के सभी नागरिकों की उत्सर्जन में समान भागीदारी है। भारत की प्रतिव्यक्ति आय विश्व औसत से बहुत कम है। एनेक्स-1 देशों के मुक़ाबले तो कोई गिनती ही नहीं। अत: भारत के लिए कोई बाध्यकारी उत्सर्जन लक्ष्य नहीं तय किया जा सकता। भारत ने कहा कि वह विकसित देशों के उत्सर्जन से मुक़ाबला नहीं करना चाहता, परंतु कभी भी उनके उत्सर्जन से अधिक प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन नहीं करेगा। साथ ही, कार्बन मुक्त अर्थव्यवस्था को अपनाने के लिए और अधिक प्रयास करेगा। इन प्रयासों में, सौर ऊर्जा का अधिक उत्पादन, नवीकरणीय ऊर्जा संसाधनों को बढ़ावा और उत्सर्जन में कमी लाने वाले वाहनों एवं उपकरणों के उपयोग को बढ़ावा देना शामिल है। भारत ने इसलिए स्वच्छ ऊर्जा विकास के लिए आधुनिक तकनीकी और उसको अपनाने के लिए आवश्यक वित्तीय सहायता दिए जाने पर ज़ोर दिया है। एनेक्स-1 देशों को इसके लिए आगे आना होगा। इस संदर्भ में बौद्धिक संपदा अधिकारों में शिथिलता लाए जाने की मांग की गई है।

कुछ प्रमुख पर्यावरण संस्थाएं

1. अंतरशासकीय जलवायु परिवर्तन पैनल (आईपीसीसी) विश्व मौसम विज्ञानी संगठन और संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम द्वारा 1998 में स्थापित यह संस्था मानवीय गतिविधियों द्वारा मौसम में होने वाले ख़तरनाक परिवर्तनों का मूल्यांकन करती है। डॉ. आर.के. पचौरी इसके अध्यक्ष हैं।
2. **यूरोपीय पर्यावरण एजेंसी (ईईए)**–यह यूरोपीय संघ का पर्यावरण प्रहरी है। इसका काम यूरोप के वातावरण और पर्यावरण पर निरंतर निगरानी रखना है।
3. **यूएन एनवायरनमेंट प्रोग्राम (यूएनईपी)**–संयुक्त राष्ट्र द्वारा गठित यह संस्था बेहतर पर्यावरणीय नीति के क्रियान्वयन में विकासशील देशों की सहायता करती है।
4. **दि इनर्जी रिसर्च इंस्टीट्यूट (टेरी)**–भारत की प्रमुख पर्यावरण अनुसंधान संस्था है।

वर्ष 2007-2008 में विश्व के कुछ चुनिंदा महानगरों में प्रतिव्यक्ति प्रदूषित गैसों का उत्सर्जन इस प्रकार रहा :

दिल्ली	1.6 टन
वाशिंगटन	19.7 टन
टोरंटो	8.2 टन
शंघाई	8.1 टन
न्यूयार्क	7.1 टन
लंदन	6.2 टन
कोलकाता	1.83 टन
बंगलुरू	0.82 टन

(**स्रोत** : आईसीएलईआई)

ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती हेतु भारत के प्रयास और लक्ष्य निम्न हैं :

- **नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग को प्रोत्साहन :** राष्ट्रीय सौर ऊर्जा मिशन का लक्ष्य 2020 तक 20 मेगावाट सौर ऊर्जा का उत्पादन करना है। इससे 40 लाख टन कार्बन डाई-ऑक्साइड के उत्सर्जन में कमी आएगी।
- **कोयला आधारित संयंत्रों में दक्षता :** सुपर क्रिटिकल बॉयलर प्रौद्योगिकी के उपयोग से वर्ष 2030 तक मौजूदा 30 प्रतिशत की कार्य कुशलता (किफायत) में 10 प्रतिशत की वृद्धि।
- **अनिवार्य ईंधन दक्षता :** वर्ष 2011 से सभी वाहनों को इस मानक का पालन करना होगा। परिवहन क्षेत्र उत्सर्जन में 15 प्रतिशत का योगदान करता है। नये ऊर्जा-क्षम इंजनों के विकास हेतु वाहन उद्योग तैयार।
- **अनिवार्य भवन निर्माण संहिता :** पर्यावरण संवेदी अभिकल्पन से आवासीय और कार्यालयीन परिसरों में ऊर्जा के उपयोग में 50 प्रतिशत की कटौती की जा सकती है।
- **जैविक कृषि क्षेत्र का विस्तार :** अभी केवल 0.5 प्रतिशत क्षेत्र में ही जैविक कृषि होती है। इस क्षेत्र का विस्तार करने से मिथेन के उत्पादन में कमी लाई जाएगी।

प्रदूषणकारी ऊर्जा के उपयोग में कमी लाने के इरादे से भारत सरकार रणनीतिक (महत्वपूर्ण) ज्ञान राष्ट्रीय मिशन की स्थापना का विचार कर रही है। क़रीब 22 अरब रुपये की यह परियोजना उत्सर्जन में कमी लाने और जलवायु परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं पर स्वदेशी तकनीक के विकास और अनुसंधान को बढ़ावा देगी। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

डब्ल्यूटीओ में विशेष एवं विभेदक व्यवहार

● बद्री बिशाल त्रिपाठी

विकसित देशों द्वारा कृषि को दी जा रही अति ऊंची सहायिका (सब्सिडी) और उरुग्वे दौर के समझौतों का विकसित देशों द्वारा अनुपालन न होने की स्थिति में विश्व व्यापार संगठन की सार्थकता पर ही प्रश्नचिह्न लगने लगा है। यदि समझौतों का क्रियान्वयन नहीं होता और सार्थक वार्ता संपन्न नहीं होती तो समझौतों को न मानने के बचावकारी विकल्प पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता उत्पन्न होती है

विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में कृषि पर समझौते का एक प्रमुख तत्व विकासशील देशों के लिए 'विशेष एवं विभेदक व्यवहार' का है। विशेष एवं विभेदक व्यवहार प्रावधान यह व्यवस्था करता है कि डब्ल्यूटीओ के अंतरराष्ट्रीय व्यापार के नियम विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की विशिष्ट दशाओं के परिप्रेक्ष्य में अंगीकृत किया जाना चाहिए। विशेष एवं विभेदक व्यवहार प्रावधान के माध्यम से विकासशील देशों को बाज़ार खोलने, घरेलू सहायता प्रदान करने, स्वास्थ्य एवं पादप स्वास्थ्य प्रावधान के नियमों को लागू करने और निर्यात सहायिका आदि के संबंध में वचनबद्धता की रियायतें प्रदान की गईं हैं। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के विकास मार्ग में अवरोधक तत्व विद्यमान रहने से अर्थव्यवस्था में पिछड़ापन बना रहता है। इसलिए उदारीकृत व्यापार व्यवस्था में विदेशी व्यापार का लाभ विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को समान रूप से नहीं मिल पाता। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में निम्न तकनीक, औद्योगीकरण का निम्न स्तर, पूंजी की कमी, अवस्थापनागत सुविधाओं की कमी और उन्नत तकनीक तक अल्प पहुंच की दशाएं बनी रहती हैं। इसलिए उनके उत्पाद विश्व बाज़ार में प्रतिस्पर्धी नहीं होते हैं। इस कारण विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में प्रशुल्कों में कमी का उनके घरेलू उद्योग पर प्रतिकूल प्रभाव होगा, घरेलू उद्योग विकसित देशों के औद्योगिक उत्पादों का सामना नहीं कर सकेंगे। घरेलू सहायता में कमी करने पर भी औद्योगिक विकास की गति बाधित होगी। इसी प्रकार विकासशील देश यदि निर्यात सहायिका में कमी करते हैं तो उनके उत्पाद विश्व बाज़ार में क़ीमत की दृष्टि से अधिक गैर प्रतिस्पर्धी हो जाएंगे। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के इस आधारिक यथार्थ और विद्यमान समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में विश्व व्यापार संगठन में विकासशील देशों के लिए 'विशेष एवं विभेदक व्यवहार' का प्रावधान किया गया है जो कृषि पर समझौते (एओए) के अभिन्न अंग हैं। कृषि पर समझौते की प्रस्तावना में कहा गया है कि विकसित देशों ने दुनिया के विकासशील देशों की विशिष्ट समस्याओं को ध्यान में रखा है। समझौते के प्रत्येक भाग में 'विशिष्ट एवं विभेदक व्यवहार' के प्रावधान को यथास्थान प्रस्तुत किया गया है। विकासशील देशों के लिए 'विशिष्ट एवं विभेदक व्यवहार' प्रावधान निम्नलिखित पांच प्रकार के हैं :

- वे प्रावधान जो सामान्यत: सबसे कम विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के हितों को ध्यान में रखते हैं।
- वे प्रावधान जो विकसित देशों की तुलना में विकासशील अर्थव्यवस्थाओं से कम वचनबद्धता की अपेक्षा करते हैं।
- वे प्रावधान जो विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को समझौते की वचनबद्धताएं लागू करने के लिए अधिक समय देते हैं।
- वे प्रावधान जो विकासशील अर्थव्यवस्थाओं से अपेक्षाकृत कम सूचना की अपेक्षा करते हैं।
- वे प्रावधान जो विकासशील अर्थव्यवस्थाओं और सबसे कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए प्राविधिक और वित्तीय सहायता

की सुविधा प्रदान करते हैं।

अर्थव्यवस्थाओं के विकास का अंतरराष्ट्रीय व्यापार एक प्रमुख उपकरण है। यह कथन अब विशेष रूप से संगत है कि विकास के लिए सहायता नहीं अपितु 'व्यापार' अधिक उपयोगी है। डब्ल्यूटीओ की क्रियाशीलता से विश्व व्यापार में मात्रात्मक वृद्धि का अनुमान किया गया था। व्यापार की मात्रात्मक वृद्धि का लाभ ग़रीब-अमीर सभी देशों को मिलना चाहिए। सबसे कम विकसित और विकासशील देशों का व्यापार वृद्धि से हित साधन होना चाहिए। इसलिए विशेष और विभेदक व्यवहार की व्यवस्था के अनुसार कई प्रावधान इस प्रकार निर्धारित किए गए हैं ताकि सबसे कम विकसित और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं का सामान्य हित साधन हो सके। समझौते की प्रस्तावना में कहा गया है कि विकसित देश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की विशिष्ट ज़रूरतों और समस्याओं को दृष्टिगत रखने के लिए सहमत हैं। विकासशील देशों, जिनकी प्रतिव्यक्ति आय 1,000 डॉलर प्रतिवर्ष से कम है, पर यह प्रावधान लागू होता है।

विशेष एवं विभेदक व्यवहार के प्रावधानों के अनुसार विकासशील देशों से कम वचनबद्धता की अपेक्षा की गई है। उदाहरण के लिए बाज़ार उपलब्धता प्रावधान के अंतर्गत विकसित देशों को साधारण औसत प्रशुल्क में 36 प्रतिशत कमी करना है। इसी प्रकार उन्हें प्रत्येक टैरिफ लाईन में कम-से-कम 15 प्रतिशत कमी करना है। इसके पृथक विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को औसत प्रशुल्क में 24 प्रतिशत और प्रत्येक टैरिफ लाईन में 10 प्रतिशत कमी करना है जबकि अत्यंत कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं को बाज़ार उपलब्धता प्रावधान के अंतर्गत साधारण औसत प्रशुल्क और टैरिफ लाईन में कोई कमी नहीं करना है। बाज़ार उपलब्धता प्रावधान में अधिकांश विकासशील अर्थव्यवस्थाओं ने अपने गैर-प्रशुल्क प्रावधानों के लिए प्रशुल्क की बाध्यकारी सीमा दरों का चयन किया है। इससे वे प्रशुल्कीकरण के जटिल संगणन प्रक्रिया से बच गए। यह उल्लेखनीय है कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं की बाध्यकारी सीमा दरें (बाउंड रेट), विश्व व्यापार संगठन की क्रियाविधि में जिसे लागू करने के लिए वे वचनबद्ध हैं सामान्यत: उनके द्वारा समझौते के समय लगाई गई प्रशुल्क दरों के बराबर है। जबकि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए बाध्यकारी सीमा दरें (बाउंड रेट) उनके द्वारा समझौते के समय लगई गई प्रशुल्क दरों से अधिक हैं। इस प्रकार यहां भी विशेष एवं विभेदक प्रावधान का लाभ विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को मिला है। इसी प्रकार विकसित अर्थव्यवस्थाओं को कुल 'एग्रीगेट मेजर्स ऑफ सपोर्ट' (कुल एएमएस) में 1986-88 की तुलना में 1995-2000 की अवधि में 20 प्रतिशत कमी करना था जबकि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को 1995-2005 की अवधि में कुल एएमएस में 13.3 प्रतिशत की कमी करना था। अत्यंत कम विकसित अथवा अति पिछड़े राष्ट्रों को कुल एएमएस में कोई कमी न करने का प्रावधान है। तदनुसार निर्यात सहायिका में विकसित देशों को 36 प्रतिशत कमी करना था जबकि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को 24 प्रतिशत कमी करना है। इसी प्रकार सहायता प्रदत्त निर्यातों की मात्रा में विकसित देशों को 21 प्रतिशत कमी करना है जबकि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को 14 प्रतिशत कमी करना है। अत्यंत कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं को निर्यात सहायिका में कोई कमी नहीं करना है। दृष्टिकोण यह है कि विकसित देशों को प्रशुल्क दर में अधिक कमी करना है और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को प्रशुल्कों को विकसित देशों की तुलना में कम घटाना है जबकि अत्यंत कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं को प्रशुल्क में कोई कमी नहीं करना है।

'विशेष एवं विभेदक व्यवहार' प्रावधान के अंतर्गत विकासशील देशों को वचनबद्धताएं लागू करने के लिए अपेक्षाकृत अधिक समय दिया गया है। कुल एग्रीगेट मेजर्स ऑफ सपोर्ट में कमी करने के लिए जहां विकसित देशों को 5 वर्ष (1995 से वर्ष 2000) की समय अवधि प्रदान की गई है, वहीं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को अपेक्षाकृत अधिक अवधि 10 वर्ष (1995 से 2005) प्रदान की गई है। सबसे कम विकसित देशों के लिए कोई समय अवधि निर्धारित नहीं है। विश्व व्यापार संगठन में प्रशुल्कीकरण के साथ प्रशुल्क में कमी करने का प्रावधान है। विकसित देशों को 5 वर्ष (1995-2000) की अवधि में प्रशुल्कों में कमी करना है जबकि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को प्रशुल्कों में कमी 10 वर्ष (1995-2005) की अवधि में करना है। निर्यात सहायिका में कमी करने के लिए विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को अपेक्षाकृत अधिक समय (1995-2005) प्रदान किया गया है। वचनबद्धताओं को लागू करने के लिए अधिक समय देने का निहितार्थ यह रहा होगा कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को संक्रमणीय परिस्थितियों से समायोजन कर सकने के लिए अधिक समय चाहिए। स्वास्थ्य एवं पादप स्वास्थ्य प्रावधान के अंतर्गत सबसे कम विकसित देशों को एसपीएस का प्रावधान लागू करने के लिए वर्ष 1995 और अन्य विकासशील देशों को वर्ष 1997 तक का समय दिया गया था। यह भी उल्लेख किया गया है कि एसपीएस के मानकों तक उत्पादन करने के लिए विकसित देश अन्य विकासशील देशों की सहायता करेंगे।

विश्व व्यापार संगठन यह अपेक्षा करता है कि सरकारें अपनी नीतियों, कानूनों और अंगीकृत प्रावधानों की सूचना विश्व व्यापार संगठन को दें और व्यापार नीति को

तालिका

कृषि पर समझौते में कटौती की दरें

वचनबद्धता की मद	विकसित देश	विकासशील देश (प्रतिशत में)	अत्यंत कम विकसित देश
1. बाज़ार उपलब्धता			
(i) साधारण औसत प्रशुल्क	36	24	0
(ii) प्रति टैरिफ लाईन में न्यूनतम कमी	15	10	0
2. घरेलू सहायता			
(i) कुल एएमएस	20	13.3	0
3. निर्यात सहायिका			
(i) सहायकता पर व्यय का मूल्य			
(ii) सहायता प्रदत्त निर्यातों की मात्रा			

पारदर्शी बनाएं। इसलिए व्यापार नीतियों का पुनर्मूल्यांकन विश्व व्यापार संगठन का एक प्रमुख प्रावधान है। उनसे यह भी अपेक्षा है कि वे नियमित रिपोर्ट के आधार पर प्रचलित व्यापार नीतियों और उसमें होने वाले परिवर्तन को सूचित करें। व्यापार नीति के पुनर्मूल्यांकन में भी विशेष एवं विभेदक व्यवहार के प्रावधान तत्व सम्मिलित किए गए हैं। व्यापार नीति पुनर्मूल्यांकन व्यवस्था में एक समय अंतराल के बाद सदस्य देशों की व्यापार नीति का मूल्यांकन किया जाता है। सबसे बड़े व्यापारिक देशों- यूएसए, यूरोपियन यूनियन, जापान और कनाडा की व्यापार नीतियों का 2 वर्ष में एक बार पुनर्मूल्यांकन किया जाता है। इसके बाद के क्रम में व्यापारिक दृष्टि से 16 बड़े देशों की व्यापार नीतियों का पुनर्मूल्यांकन 4 वर्ष में एक बार किया जाता है। शेष अन्य विकासशील देशों की व्यापारिक नीतियों का 6 वर्ष में एक बार पुनर्मूल्यांकन किया जाता है।

इसी प्रकार सबसे कम विकसित देशों के व्यापार नीति के पुनर्मूल्यांकन हेतु अपेक्षाकृत अधिक समय दिए जाने की व्यवस्था है। विशेष एवं विभेदक व्यवहार के अनुसार विश्व व्यापार की क्रियाविधि में विकासशील और सबसे कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं से अपेक्षाकृत कम सूचना की अपेक्षा की गई है ताकि वे अर्थव्यवस्थाएं जटिल प्रगणन की समस्या से बच सकें। विशेष एवं विभेदक व्यवहार के 'नोटिफिकेशन रिक्वायरमेंट एंड फॉरमेट' के अनुसार विकासशील अर्थव्यवस्थाएं और अत्यंत कम विकसित अर्थव्यवस्थाएं अनुरोध के साथ डी.एस.-1 से डी.एस.-3 तक की तालिकाओं की रिपोर्ट को स्थगित कर सकती है। अत्यंत कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए विशेष एवं विभेदक व्यवहार में यह अतिरिक्त प्रावधान किया गया है कि वे डी.एस.-1 से डी.एस.-3 की अनुपूरक तालिकाएं प्रतिवर्ष जमा करने के बजाय प्रत्येक दो वर्ष में जमा करें। इससे पृथक विकसित अर्थव्यवस्थाओं को उक्त संदर्भित तालिकाएं प्रतिवर्ष जमा करना है।

विशेष एवं विभेदक व्यवहार के अंतर्गत सबसे कम विकसित देशों के हितों को ध्यान में रखा गया है। प्रशुल्कीकरण और प्रशुल्कों में कमी करने से विकसित देशों की क्षति कम होगी। इसलिए 'विशेष एवं विभेदक व्यवहार' के अनुसार अत्यंत कम विकसित देशों को साधारण औसत प्रशुल्क में कमी न करने का प्रावधान किया गया है। इसी प्रकार प्रति टैरिफ लाईन में प्रशुल्क में न्यूनतम कमी की अपेक्षा से भी अत्यंत कम विकसित देशों को मुक्त रखा गया है। अत्यंत कम विकसित देशों को बाज़ार उपलब्धता प्रावधान के अंतर्गत कुल एएमएस में कोई कमी नहीं करना है। इन देशों को निर्यात सहायिका में भी कोई कमी नहीं करना है। समझौते में विकसित देशों के बाज़ारों तक सबसे कम विकसित एवं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के उत्पादों की पहुंच बढ़ाने के लिए यह प्रावधान किए गए हैं। इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख समझौते की प्रस्तावना में किया गया है। इसमें कहा गया है कि अत्यंत कम विकसित देशों के सामान्य हितों के परिप्रेक्ष्य में ही 'विशेष एवं विभेदक व्यवहार' को समझौते का अनिवार्य तत्व माना गया है।

सिद्धांत रूप में 'विशेष एवं विभेदक व्यवहार' को विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के व्यापार विकास में सहायक तत्व के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परंतु इसके घरेलू सहायता और निर्यात सहायिका के अधिकांश प्रावधान विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए उपयोगी नहीं हैं। कई विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में कुल एएमएस नकारात्मक है। अत: उसे कम करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। घरेलू सहायता के प्रावधान का प्रयोग 1995 और 1996 में मात्र 26 प्रतिशत विकासशील अर्थव्यवस्थाओं ने किया। अन्य बहुसंख्यक देशों के लिए यह प्रावधान उपयोगी नहीं रहा क्योंकि उनकी घरेलू सहायता का स्तर स्वीकृत स्तर से कम है और व्यापार में व्यवधान उत्पन्न करने के स्तर तक नहीं है। निर्यात सहायिका में नीची कमी का विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को कोई उल्लेखनीय लाभ नहीं मिल रहा है क्योंकि बहुत कम विकासशील अर्थव्यवस्थाएं निर्यात सहायिका (सब्सिडी) प्रदान करती हैं। विकासशील और सबसे कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं को अधिक समय दिया गया है। परंतु निरपेक्ष रूप से यह समय अवधि अत्यंत कम है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं का पिछड़ापन ऐतिहासिक है। उनमें से अधिकांश दीर्घकाल तक औपनिवेशिक शोषण के शिकार रहे हैं। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं को अपनी वचनबद्धता लागू करने के लिए सामान्यत: 5 वर्ष का अधिक समय देना मात्र औपचारिकता का निर्वाह करना है। इस प्रकार 'विशेष एवं विभेदक व्यवहार' की अधिकांश रियायतें विकासशील और सबसे कम विकसित अर्थव्यवस्थाओं के लिए लाभकारी नहीं रह जाती हैं।

यह भी अत्यंत महत्वपूर्ण है कि विकसित औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं ने विश्व व्यापार संगठन के समझौते में दी गई अपनी वचनबद्धता को व्यवहार में लागू करने में शिथिलता प्रदर्शित की है। जिन मुद्दों पर समझौते हो चुके हैं, उन पर विकसित देशों में क्रियान्वयन नहीं हो रहा है। इसलिए एसडीटी के प्रावधानों की सार्थकता नगण्य हो जाती है। इसके अतिरिक्त विश्व व्यापार संगठन की कार्यविधि में लगातार गैर-व्यापार मुद्दे प्रभावी होते जा रहे हैं। जो गैट की मूल विचारधारा में सम्मिलित नहीं थे। बहुपक्षीय निवेश, सरकारी क्रय में पारदर्शिता, प्रतिस्पर्धा नीति, व्यापार सुविधाकरण नामक सिंगापुर मुद्दे और पर्यावरण तथा श्रम मानक जैसे सामाजिक मुद्दों को विश्व व्यापार संगठन में सम्मिलित करने से विकासशील देशों को भारी क्षति हो रही है। इनमें एसडीटी के अंतर्गत न तो कोई रियायत है और न ही कोई अतिरिक्त सुविधा उपलब्ध है। 'कृषि पर समझौता' मंत्रीस्तरीय सम्मेलनों में लगातार मुख्य मुद्दा बना है। वार्ता में लगातार गतिरोध बने रहने के कारण हांगकांग सम्मेलन (2005) के बाद अब तक कोई मंत्रीस्तरीय सम्मेलन नहीं हुआ। इस बीच कई उपमंत्री स्तरीय सम्मेलन आयोजित हुए। दिल्ली में 3-5 सितंबर, 2009 में उप मंत्रीस्तरीय सम्मेलन हुआ तथापि कृषि के मुद्दे पर गतिरोध बना हुआ है। विकसित देशों द्वारा कृषि को दी जा रही अति ऊंची सहायिका (सब्सिडी) और उरुग्वे दौर के समझौतों का विकसित देशों द्वारा अनुपालन न होने की स्थिति में विश्व व्यापार संगठन की सार्थकता पर ही प्रश्नचिह्न लगने लगा है। यदि समझौतों का क्रियान्वयन नहीं होता और सार्थक वार्ता संपन्न नहीं होती तो समझौतों को न मानने के बचावकारी विकल्प पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता उत्पन्न होती है। ❑

(लेखक इलाहाबाद डिग्री कॉलेज के अर्थशास्त्र विभाग में रीडर हैं)

प्लास्टिक थैलियों से छुटकारा

● संजय दवे

ऐसे समय जब पर्यावरण और दुनिया के बढ़ते तापमान के असर जैसे महत्वपूर्ण विषय पर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर गरमागरम बहस चल रही हो, गुजरात की सिद्धपुर नगरपालिका ने पर्यावरण रक्षा की दिशा में अनुकरणीय कदम उठाया है।

सरकार ने 20 माइक्रोन मोटाई से कम की प्लास्टिक थैलियों के उत्पादन पर भले ही रोक लगा दी है, लेकिन पतली थैलियों का उत्पादन और प्रयोग धड़ल्ले से किया जा रहा है। इससे ज़ाहिर होता है कि हम इस मामले में कितने लापरवाह हैं। यह ऐसा मुद्दा है जो सिर्फ़ हमारे ही नहीं, हमारे समूचे पर्यावरण को प्रभावित करता है। कभी-कभी हमें इसकी तरफ ध्यान देने के लिए अपनी ही अंतरात्मा की आवाज़ सुनने की ज़रूरत होती है कि प्रदूषित पर्यावरण कितना ख़तरनाक है और इसे प्रदूषणमुक्त रखना हमारी जिम्मेदारी है। सिद्धपुर के मामले में ऐसी आवाज़ नगरपालिका की ओर से सुनाई दी। इस आवाज़ में दम महसूस किया गया क्योंकि इसके लिए लीक से हटकर कुछ करने की ज़रूरत थी।

यह जानने के लिए कि प्लास्टिक की पर्यावरणरोधी थैलियां कहां से आती हैं– तीन समूह बनाए गए। उन्हें पता चला कि बाहर से आने वाले व्यापारी ये थैलियां लाते हैं। इसके बाद कार्रवाई की गई। अधिकारियों के दल शहर में फैल गए। उन्होंने थैलियां बरामद कीं और उन्हें रिसाइक्लिंग के लिए भेज दिया। जो लोग इन थैलियों का इस्तेमाल करते पाए गए, उन्हें सख़्ती से समझाया गया। यह कार्रवाई सरकार की तरफ से की गई अत: इसका असर हुआ।

जल्दी ही लोगों ने इन थैलियों का प्रयोग बंद कर दिया। असली चुनौती थी लोगों को इन थैलियों का व्यावहारिक विकल्प सुझाना। सुझाव भी ऐसा हो जिससे तुरंत विकल्प मिले और लंबे अरसे तक मान्य रहे। साथ ही, इसके ज़रिये स्थानीय लोगों में जागरुकता लाई जाए और उनका व्यवहार बदले। इसके लिए 47 सखी मंडल (महिला समूह) गठित किए गए। इन्हें राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी अधिनियम के तहत गठित किया गया। यह ऐसा तंत्र था जिसकी ज़रूरत नगरपालिका महसूस कर रही थी और जिसके ज़रिये लोगों को कागज़ की थैलियां इस्तेमाल करने के लिए समझाना था।

सखी मंडलों के ज़रिये यह संदेश पहुंचाने के बजाय नगरपालिका ने एक कदम और आगे बढ़ाया और सिर्फ़ इसी काम के लिए एक समूह को प्रशिक्षित किया। ग़रीबी रेखा के नीचे के परिवारों की जीविकोपार्जन के लिए 50 महिलाओं को कागज़ की थैलियां बनाने का प्रशिक्षण देने के लिए चुना गया। उन्हें प्रशिक्षण में शामिल किया गया और उनका एक समूह बना दिया गया। यह उनके लिए खुशी की बात है कि ऐसा करके इन महिलाओं ने 100 रुपये मासिक की बचत करना शुरू कर दिया। यह एक उल्लेखनीय शुरुआत थी लेकिन काफी नहीं थी। महत्वपूर्ण बात यह थी कि इन थैलियों की अच्छी गुणवत्ता सुनिश्चित की जाए ताकि वे बाज़ार में अपनी जगह बना सकें और उपभोक्ताओं का व्यवहार बदल सकें। नगरपालिका ने बाज़ार का व्यापक सर्वेक्षण कराया और गुणवत्ता, डिज़ाइन, माल की पसंद, कागज़ की मोटाई और थैलियों की लंबाई-चौड़ाई के बारे में उनकी अपेक्षाएं दर्ज़ की।

इसे परिपक्व व्यापार बुद्धि और सामाजिक परिवर्तन लाने का विशुद्ध व्यावसायिक रवैया ही कहा जाएगा जिसे इस महत्वपूर्ण उद्देश्य को पूरा करने के लिए अपनाया गया और इसमें प्रगति हुई। कागज़ की थैलियां बनाने का काम कोई तात्कालिक उद्देश्य की बात नहीं बल्कि सर्वेक्षण करके ग्राहकों की ज़रूरतें पूरी करने के लिए शुरू किया गया। महिलाओं के नवगठित समूह इस सफलता के भागीदार बने। थैलियों के उत्पादन के लिए कच्चा माल खरीदने की बात आई तो उन्होंने बहुत उत्साह और भागीदारी की भावना दिखाई। कागज़ की थैलियों का इस्तेमाल करने के विचार ने जड़ें जमा लीं और यह इस काम में लगे लोगों को पसंद आ गया। उन्होंने इस काम के हर चरण में हाथ बंटाया।

इन महिलाओं ने विक्रय मूल्य तय करने से पहले कच्चे माल, इसमें लगे समय और लाभ की गणना की। इस हिसाब-किताब के बाद कागज की थैलियां 54 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बेचने का निश्चय किया गया जबकि प्लास्टिक थैलियां 120 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से मिलती थीं। जल्दी ही लोगों को इसके इस्तेमाल से होने वाले दोहरे लाभ का अहसास हो गया। स्पष्ट हो गया कि पर्यावरण हित में काम करते हुए 66 रुपये की बचत भी हो रही है साथ ही ग़रीब महिलाओं को रोज़ी-रोटी कमाने का अवसर भी उपलब्ध हुआ है।

वर्तमान में यह समूह परचून की दुकानों पर इस्तेमाल में आने वाली ऐसी थैलियां बना रहा है जो 250 ग्राम से लेकर 2 किलोग्राम तक सामान बेचने के काम में आती हैं। ये महिलाएं प्रतिदिन 2 से 8 किलोग्राम तक थैलियां बना लेती हैं। इस प्रकार वे अपने घर में काम करके 30 से 120 रुपये प्रतिदिन की आमदनी कर लेती हैं। वे अपनी गृहस्थी चलाने में महत्वपूर्ण आर्थिक योगदान कर रही हैं साथ ही, पर्यावरण रक्षा में भी हाथ बंटा रही हैं।

एक और महत्वपूर्ण लाभ इस उपयोगी उपाय को सार्थक सिद्ध करता है। अब शहर से निकलने वाले क़चरे में प्लास्टिक थैलियां नहीं होतीं। इससे कचरे का निपटान आसान हो गया है। नगरपालिका के अधिकारियों द्वारा किया गया यह प्रयास अब स्थानीय क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा। उनकी कोशिशों और इसके महत्वपूर्ण प्रभाव को गुजरात का सिटी मैनेजर्स एसोसिएशन कलमबद्ध कर रहा है। इस नगरपालिका की सफलता से प्रेरणा लेकर अन्य स्थानीय निकाय भी कागज़ की थैलियों को लोकप्रिय बनाने के काम में लग गए हैं। समय बदल रहा है और सही दिशा में उठाए गए एक कदम के बाद अनेक कदम खुद-ब-खुद उसी दिशा में उठ जाते हैं। ❑

(चरखा फीचर्स)

हिंद स्वराज : सभ्यता विमर्श का समावेशी पाठ

● सरोज कुमार वर्मा

सौ साल पहले सन् 1909 में लिखी गई क़िताब *हिंद स्वराज* गांधी-चिंतन का प्रस्थान-बिंदु है। आगे उन्होंने जो भी वैचारिक यात्राएं कीं, उनका उत्स यहीं से होता है। वर्ष 1909 में तब टाल्सटॉय ने इसके प्रतिपाद्य विषय से सहमति जताते हुए इसकी प्रशंसा की थी, लेकिन गोखले ने इसे अनगढ़ और कच्चा मानते हुए ख़ारिज कर दिया था। उन्होंने कहा था कि एक साल तक भारत में रहने के बाद, (क्योंकि उन दिनों गांधी दक्षिण अफ्रीका में रह रहे थे) गांधी इसे स्वयं नष्ट कर देंगे, परंतु गांधी ने ऐसा नहीं किया। बाद के दिनों में उन्होंने इसमें एक शब्द को किसी महिला मित्र की इच्छा मानकर रद्द करने के सिवा कोई तब्दीली नहीं की, उल्टे लगातार इससे सहमति व्यक्त करते रहे और सन 1945 में नेहरू को लिखे अपने पत्र में भी इसकी स्थापनाओं का पूर्ण समर्थन किया। मगर सवाल उठता है इस समर्थन के आधी सदी से अधिक हो गए और इस क़िताब को आए हुए एक शताब्दी बीत गई, क्या वक्त के इस लंबे अंतराल के बाद भी, जबकि बहुत कुछ बदल चुका है, इसकी स्थापनाओं की कोई उपादेयता है? उत्तर होगा- है। और पहले से ज्यादा है, क्योंकि इस क़िताब के केंद्र में गांधी का सभ्यता-पाठ है। सभ्यता जीवन का नियामक मूल्य है। हम जिस मूल्य को जीते हैं वह हमारी सभ्यता में प्रकट होता है। इस लिहाज़ से तब गांधी ने जिस सभ्यता को अमानवीय कह कर इंकार किया था, उसका दंश और गहरा हो गया है। उसके दोषों में न केवल मात्रात्मक वृद्धि हुई है बल्कि उसमें गुणात्मक परिवर्तन भी हो गया है और अब यह उस सर्वग्रासी ब्लैक होल-सी हो गई है, जिसकी कशिश में खींचती हुई, अंततः सारी मानवता उसमें समाकर नष्ट हो जाने वाली है। यह क़िताब, इसी मायने में ज्यादा प्रासंगिक है कि गांधी ने उस वक्त इस मारक सभ्यता से दूर रहने की चेतावनी देते हुए, बचाव के जो सूत्र बताए थे, आज उस पर अमल करने के अलावा और कोई विकल्प दिखाई नहीं देता।

हिंद स्वराज में यह विकल्प इसलिए दिखाई देता है कि उसमें गांधी ने पाश्चात्य सभ्यता की, जोकि आंधुनिक सभ्यता के नाम से जानी जाती है, सख़्त टीका की है। उन्होंने इस सभ्यता की पहचान करते हुए कहा कि अच्छा खाना, अच्छा पहनना, अच्छे घरों में रहना, अधिक संपत्ति जमा करना, उन्नत हथियारों का इस्तेमाल करना, कृषि तथा अन्य कार्यों में यंत्र का उपयोग करना, तेज़ वाहनों से चलना, पैसे के लोभ में लोगों को गुलाम बनाना तथा इसी तरह के ढेर सारे क्रिया-कलापों में संलग्न रहना सभ्यता की निशानी मानी जाती है। यद्यपि गांधी ने तभी इस तरह के क्रिया-कलापों की विस्तार से चर्चा की है, परंतु अभी की तुलना में वह कुछ भी नहीं है। आज इनमें इतनी वृद्धि हो गई है कि गांधी को उस वक्त इसकी कल्पना भी नहीं हुई होगी। इसके बावजूद गांधी उसी वक्त इस सभ्यता के मूल भौतिकवादी चरित्र को तथा विस्तारवादी नीति को पहचान गए थे। उन्हें तभी यह स्पष्ट हो गया था कि यह सभ्यता सिर्फ़ भौतिक संपदा पर आधारित शारीरिक सुखों को तरजीह देने वाली है, इसलिए उसके असीम विस्तार में भरोसा करती है। इसी भरोसे के कारण वह निरंतर इसके विकास के लिए प्रयासरत रहेगी और रोज़-रोज़ और अधिक मात्रा में शारीरिक सुख देने वाली उत्पादन में संलग्न रहेगी। आज यही हो रहा है। अति तीव्र वाहनों से लेकर स्वचालित यंत्र तक, चाहे वे सुरक्षा के नाम पर बनाए गए हथियार हों, कृषि के नाम पर बनाए गए औज़ार हों या फिर शिक्षा, स्वास्थ्य, सुविधा और उन्नति के नाम पर बनाए गए उपकरण हों, सब अंततः शारीरिक सुख ही देने वाले हैं। इससे इतर इनका अन्य कोई उद्देश्य नहीं है। किसी नीति, धर्म, आत्मिक उत्थान अथवा किसी मानवीय हित के लिए इसमें कोई जगह नहीं है। इसीलिए गांधी ने इसे सर्वनाशी मानते हुए कहा था, "इस सभ्यता की सही पहचान तो यह है कि लोग बाहरी दुनिया खोजने में और शरीर के सुख में धन्यता, सार्थकता और पुरुषार्थ मानते हैं। शरीर का सुख कैसे मिले यही आज की सभ्यता ढूंढती है और यही देने की कोशिश करती है। परंतु वह सुख भी नहीं मिल पाता।

"यह सभ्यता तो अधर्म है और यूरोप में इस क़दर यह फैल गई है कि वहां के लोग आधे पागल जैसे दिखते हैं। वे नशा करके अपनी ताक़त कायम रखते हैं। एकांत में वे बैठ नहीं सकते। जिन स्त्रियों को घर की रानी होनी चाहिए, उन्हें गलियों में भटकना पड़ता है, या मज़दूरी करनी पड़ती है। इंग्लैंड में चालीस लाख ग़रीब औरतों को पेट के लिए मज़दूरी करनी पड़ती है, और आजकल इसके कारण 'सफ्रेजेट' का आंदोलन चल रहा है।

"यह सभ्यता ऐसी है कि अगर हम धीरज धर कर बैठे रहेंगे, तो सभ्यता की चपेट में आए हुए लोग खुद की जलाई हुई आग में जल मरेंगे। पैगंबर मोहम्मद साहब के मुताबिक यह शैतानी सभ्यता है। हिंदू धर्म इसको 'कलयुग' कहता है,

मैं आपके सामने इस सभ्यता का हू-ब-हू चित्र नहीं खींच सकता। यह मेरी क्षमता के बाहर है। लेकिन आप समझ सकेंगे कि इस सभ्यता के कारण अंग्रेज़ प्रजा में सड़न ने घर कर लिया है। यह सभ्यता दूसरों का नाश करनेवाली और खुद नाशवान है।" *(हिंद स्वराज, पृ.17-20 नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद)।*

विकास आधुनिक अवधारणा है, जो इस सभ्यता की कोख़ से पैदा हुई है। यह अवधारणा भौतिक विकास को विकास का एकमात्र मापदंड मानती है। इस मापदंड पर वह देश अथवा व्यक्ति विकसित माना जाता है, जो भौतिक चीज़ों का अत्यधिक उपभोग करता है। चूंकि विकास का यह ढांचा उद्योग पर आधारित है, इसलिए औद्योगिक रूप से जो देश अथवा व्यक्ति जितना अधिक उन्नत है, वह देश अथवा व्यक्ति उतना ही अधिक विकसित माना जाता है, क्योंकि वह देश अथवा व्यक्ति उन्नत उद्योगों के द्वारा अधिकाधिक भौतिक चीज़ें उत्पादित कर उनका अधिकाधिक उपभोग करता है। जिन देशों अथवा व्यक्तियों में यह सामर्थ्य नहीं है, वे विकासशील कहलाते हैं और उन्हें भी विकसित होने के लिए वही सब करना है, जो विकसित देश अथवा व्यक्ति करते हैं।

इसप्रकार विकास की इस अवधारणा ने एक ऐसी भोगवादी जीवन-पद्धति को जन्म दिया है, जिसमें मनुष्य ज़रूरी और ग़ैर ज़रूरी चीज़ों में अंतर किए बगैर ज्यादा से ज्यादा भौतिक चीज़ों की मांग करता है। वास्तव में भोगवाद की यह खासियत है कि वह ग़ैर ज़रूरी चीज़ों को भी ज़रूरी बना देता है। वह प्रचारक माध्यम से मनुष्य को यह समझाने में सफल हो जाता है कि इन चीज़ों को प्राप्त कर लेने से ही जीवन अर्थपूर्ण हो जाता है। इसलिए यदि इन्हें प्राप्त नहीं किया जाए तो जीवन अर्थहीन हो जाएगा। इसी समझ के कारण मनुष्य के मन में उन चीज़ों को प्राप्त करने की तीव्र इच्छा उत्पन्न होती है और उसका परिणाम होता है कि उसकी सीमित इच्छा असीम बन जाती है और वह इन कृत्रिम ज़रूरतों को पूरा करने के लिए गैर ज़रूरी चीज़ों की प्राप्ति हेतु बेचैन हो जाता है। चूंकि यह इच्छा सभी के मन में जन्म लेती है अत: इसमें पीछे रह जाने वाले के मन में असंतोष पैदा होता है। जो अंतत: हिंसा और अत्याचार का कारण बनता है। सच्चिदानंद सिन्हा इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए लिखते हैं- ''उपभोग बढ़ाया जाए तो यह सीमाहीन हो सकता है। इसके लिए नित्य नये उपक्रम तैयार किए जा सकते हैं। लेकिन उपभोग की वस्तु का हर नया आविष्कार प्रारंभ में एक छोटे समूह को ही उपलब्ध हो सकता है। बाकी लोग उसके लिए लालायित ही रहेंगे। उत्पादन के विस्तार से जब तक यह आम उपभोग के क्षेत्र में आएगी, उपभोग की कुछ नयी वस्तु आविष्कृत हो जाएगी और यह सिलसिला जारी रहेगा। इस स्थिति में गैर बराबरी और प्रतिद्वंद्विता के बीज निहित हैं। इसलिए उपभोग की वस्तुओं के विस्तार पर आधारित सभ्यता, चाहे जैसी भी हो, व्यापक असंतोष पैदा करेगी। हमारी सभ्यता का यही रोग है। (*वर्तमान विकास की सीमाएं* पृ.19, ले. सच्चिदानंद सिंन्हा प्र. विकल्प प्रकाशन, मुजफ्फरपुर)।

इस रोग को और बढ़ाने में यंत्रों का महत्वपूर्ण योगदान है। यंत्र सम्मोहित करने, शोषण करने, हिंसा फैलाने तथा आधिपत्य जमाने जैसे सभी मानवीय हितों के विपरीत पड़ने वाले कारनामों को अंजाम देने के उपादान हैं। वे बड़े-बड़े कारखाने, जिनमें मज़दूरों को कम मज़दूरी देकर अधिक काम करवाए जाते हैं, यंत्रों के बल पर ही चलते हैं। कम मज़दूरी देकर अधिक काम करवाना शोषण तो है ही, इन कारखानों में बने सामानों को अधिक मुनाफ़े पर बेचकर भी लोगों का शोषण किया जाता है। फिर इन कारखानों में रोज़ भोग की जो नयी चीज़ों का उत्पादन होता है, उन्हें ख़रीदने के लिए विज्ञापन के माध्यम से जो लोगों को सम्मोहित किया जाता है, उसमें भी यंत्र की भूमिका होती है। इस विज्ञापन के बहकावे में आकर ही लोग ग़ैर ज़रूरी चीज़ों को खरीदने के बेमानी दौड़ में पड़ जाते हैं। यंत्र यहां भी शोषण को अंजाम देने का काम करता है। इसके अतिरिक्त बड़ी मात्रा में ऐसे स्वचालित हथियार, जिनका मात्र बटन दबाकर लाखों मील दूर के हज़ारों व्यक्तियों को मारा जा सकता है, यंत्र द्वारा ही बनाए जाते हैं। यंत्रनिर्मित और यंत्रचालित इन हथियारों, जोकि स्वयं भी यंत्र ही हैं, का कुल उपयोग हिंसा फैलाने से लेकर आधिपत्य जमाने तक है। इसप्रकार अपनी इन तमाम उपयोगिताओं के कारण यंत्र मुट्ठीभर मज़बूत लोगों द्वारा ढेर सारे कमज़ोर लोगों को गुलाम बनाने का साधन बन गए हैं। इसीलिए गांधी यंत्रों का तीव्र विरोध करते हुए कहते हैं- ''यंत्र आज की सभ्यता की मुख्य निशानी है और वह महापाप है, ऐसा मैं साफ़ देख सकता हूं। यंत्र सांप का ऐसा बिल है, जिसमें एक नहीं बल्कि सैकड़ों सांप होते हैं। एक के पीछे दूसरा लगा ही रहता है। जहां यंत्र होंगे वहां बड़े शहर होंगे, जहां बड़े शहर होंगे वहां ट्रामगाड़ी और रेलगाड़ी होगी, बिजली-बत्ती की ज़रूरत होगी। प्रामाणिक डॉक्टर आपको बताएंगे कि जहां रेलगाड़ी, ट्रामगाड़ी साधन बढ़े हैं, वहां लोगों की तंदुरुस्ती गिरी हुई है। यंत्र का गुण तो मुझे एक भी याद नहीं आता, जबकि उसके अवगुणों पर मैं पूरी क़िताब लिख सकता हूं *(हिंद स्वराज, पृ.76-79)।*

यद्यपि गांधी आरंभ में यंत्रों से ऐसी तल्ख असहमति दर्शाते हैं, परंतु बाद में इसमें संशोधन करते हुए उन यंत्रों से सहमत हो जाते हैं, जिनसे शारीरिक श्रम तो बचता है लेकिन शोषण करने और आधिपत्य जमाने आदि में मदद नहीं मिलती। इस सहमति के बाद वे अपने वक्तव्य को परिमार्जित करते हुए यंत्रों की हद बांधने की बात करते हैं। वे कहते हैं "मेरा विरोध यंत्रों के लिए नहीं है, बल्कि उन यंत्रों के पीछे जो पागलपन चल रहा है, उसके लिए है। समय और श्रम की बचत तो मैं भी चाहता हूं, परंतु वह किसी खास वर्ग की नहीं, बल्कि सारी मानव-जाति की होनी चाहिए। सबसे पहले यंत्रों की खोज और विज्ञान लोभ के साधन नहीं होने चाहिए। फिर मज़दूरों से उनकी ताक़त से ज्यादा काम नहीं लिया जाएगा और यंत्र रुकावट बनने के बजाय मददगार हो जाएंगे। मेरा उद्देश्य तमाम यंत्रों का नाश करने का नहीं है, बल्कि उनकी हद बांधने का है" (*हिंद स्वराज* की प्रस्तावना)। स्वचालित और जटिल यंत्रों पर रोक इस हद के द्वारा ही लग सकती है। तभी कपड़ा सिलने वाली मशीन तथा तकुआ सीधा करने वाली मशीन जैसे छोटे यंत्र, जिससे गांधी सहमति जताते हैं, स्वीकृत हो सकते हैं और क्रेन तथा कंप्यूटर जैसे बड़े और जटिल यंत्र, जिससे गांधी असहमति जताते हैं, अस्वीकृत किए जा सकते हैं। गांधी के मुताबिक ऐसा करने पर ही लोभ के स्थान पर प्रेम को जगह मिलेगी और समाज में सब कुछ अच्छा हो पाएगा।

इस अच्छाई के लिए गांधी *हिंद स्वराज* में पाश्चात्य सभ्यता को ख़ारिज कर उसके विकल्प के रूप में भारतीय सभ्यता को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रस्तुति की वजह भारतीय सभ्यता का नैतिक और धार्मिक होना है। नीति और धर्म, जो भारतीय सभ्यता का केंद्र है, को गांधी सभ्यता का मूल चरित्र मानते हैं। इसीलिए वे सभ्यता को परिभाषित करते हुए कहते हैं, "सभ्यता वह आचरण है जिससे आदमी अपना फ़र्ज अदा करता है। फ़र्ज

अदा करने का मतलब है नीति का पालन करना। नीति के पालन का मतलब है अपने मन और इंद्रियों को वश में रखना। ऐसा करते हुए हम अपने को पहचानते हैं, यही सभ्यता है" (*हिंद स्वराज*, पृ. 42-43)। असलियत पहचानने का यह गुण, जो नीति और धर्म से आता है, भारतीय सभ्यता में है, इसलिए गांधी इस सभ्यता को दुनिया की अन्य सभ्यताओं से श्रेष्ठ मानते हैं। उनके अनुसार इसमें वे तत्व भी नीति और धर्म के कारण ही हैं। इसीलिए जहां दुनिया की अन्य सभ्यताएं नष्ट हो गईं वहां हिंदुस्तानी सभ्यता अब भी बची हुई है। वह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं, "मैं मानता हूं कि जो सभ्यता हिंदुस्तान ने दिखाई है, उस तक दुनिया में कोई नहीं पहुंच सकता। जो बीज हमारे पुरखों ने बोए हैं, उनकी बराबरी कर सके ऐसी कोई चीज़ देखने में नहीं आई। रोम मिट्टी में मिल गया, ग्रीस का सिर्फ़ नाम ही रह गया, मिस्र की बादशाही चली गई, जापान पश्चिम के शिकंजे में फंस गया और चीन का कुछ भी नहीं कहा जा सकता। लेकिन गिरा-टूटा जैसा भी हो, हिंदुस्तान आज भी अपनी बुनियाद में मज़बूत है" (*हिंद स्वराज*, पृ. 42)। इस मज़बूती की नींव संयम और सादगी की ज़मीन पर टिकी हुई हैं। संयम और सादगी मन और इंद्रियों के नियंत्रण से आती है। गांधी इस नियंत्रण पर अधिक बल देते हैं, क्योंकि इस नियंत्रण के द्वारा ही मांग की लिप्सा से बचा जा सकता है। सुख और दुख वास्तव में मन की वृत्तियां हैं, देह से उनका कोई ताल्लुक नहीं है। इसीलिए धनवान व्यक्ति भी दुखी होता है और धनहीन व्यक्ति भी सुखी होता है। यह सब मन के नियंत्रण-अनियंत्रण के कारण होता है। यदि मन नियंत्रण में हो तो धन के अभाव में भी कोई कमी महसूस नहीं होती, इसलिए सुख ही मिलता है। लेकिन यदि मन अनियंत्रित हो तो धन के अंबार में भी कमी महसूस होती है, इसलिए दुख ही मिलता है। मन की वजह से सुख भोग की इच्छा पैदा होती है और देह उन सुखों को भोगते-भोगते अभ्यस्त हो जाती है। फलतः वह सदा सुख की मांग करने लगती है और इस प्रकार व्यक्ति सुख भोग की लिप्सा में कैद हो जाता है। इस कैद से रिहाई मन के नियंत्रण से ही मिल सकती है। इसीलिए गांधी पूर्वजों द्वारा मन को नियंत्रित कर भोग की सीमा बांधे जाने को उचित ठहराते हुए कहते हैं, "हमने देखा कि मनुष्य की वृत्तियां चंचल हैं उसका मन बेकार की दौड़-धूप किया करता है। उस शरीर को जैसे-जैसे ज्यादा दिया जाए वैसे-वैसे ज्यादा मांगता है। ज्यादा लेकर भी वह सुखी नहीं होता। भोग भोगने से भोग की इच्छा बढ़ती जाती है। इसीलिए हमारे पुरखों ने भोग की हद बांध दी" (*हिंद स्वराज*, पृ. 43)। गांधी अपने सभ्यतापाठ में इस हद को सर्वाधिक महत्व देते हैं। क्योंकि इस हद के द्वारा ही एक ऐसी समावेशी सभ्यता विकसित हो सकती है जिसमें शोषक-शोषित, अमीर-ग़रीब, मालिक-गुलाम और बड़े-छोटे की कोई खाई न रहे। सब एक समान धरातल पर एक-दूसरे के सहयोग के साथ जीवन बसर कर सकें। चूंकि ऐसी समावेशी सभ्यता के विकास में अत्यधिक सुखभोग, अतिरिक्त संपदा-संग्रह, शोषण में सहयोगी यंत्र तथा भौतिक विकास की अवधारणा बाधक हैं, और ये ही पाश्चात्य सभ्यता के मूल तत्व हैं, इसलिए गांधी पाश्चात्य सभ्यता की आलोचना करते हैं और धर्म, मन-इंद्रियों का नियंत्रण, फ़र्ज अदायगी तथा अपनी असलियत की पहचान इस समावेशी सभ्यता के मूल तत्व हैं, इसलिए वे हिंदुस्तानी सभ्यता की हिमायत करते हैं। यह सभ्यता लोगों को सीमित साधनों में संतोष से जीना सिखाती है, इसलिए इसमें अनयिंत्रित भोग की गुंजाइश नहीं बचती, फलतः बेतहाशा धन-संग्रह की होड़ भी पैदा नहीं होती। यह होड़ पैदा न हो, इसीलिए यहां यंत्रों से यथासंभव परहेज किया गया, हाथ-पैर से काम किए गए, हल-बैल से खेती की गई, छोटा-मोटा व्यवसाय किया गया तथा शहर बसाने से दूर रहा गया; क्योंकि शहरों की अपनी संरचना होती है। इसमें धनवान धन लूटता है। मज़बूत कमज़ोरों का शोषण करता है। इसलिए गांधी इस बात के पक्षधर थे कि गांव-देहात की जो भारतीय पारंपरिक सभ्यता है उस पर हमें फख्र करना चाहिए और उसे बचाने का प्रयास करना चाहिए। यद्यपि पश्चिम वाले इसे देश का पिछड़ापन मानते हैं, लेकिन गांधी इस आरोप को सिरे से नकारते हुए कहते हैं, "हिंदुस्तान पर आरोप लगया जाता है कि वह ऐसा जंगली, अज्ञानी है कि उससे जीवन में कुछ फेर-बदल कराए ही नहीं जा सकते। यह आरोप हमारा गुण है, दोष नहीं। अनुभव से जो हमें ठीक लगा है, उसे हम क्यों बदलेंगे? बहुत से अक्ल देने वाले आते-जाते रहते हैं, पर हिंदुस्तान अडिग रहता है। यह उसकी खूबी है, यह उसका लंगर है" (*हिंद स्वराज* पृ. 32)। यह लंगर आज मज़बूती से डाले रहने की ज़रूरत है, क्योंकि आज हिंदुस्तान सहित संसार के बहुत सारे देश के नीतिपरक मूल्यों का जहाज़ पश्चिम की जिस आधुनिक भौतिकवादी सभ्यता की तेज़ आंधी में बह जाने के कगार पर है, उसे संयम और सादगी का यही लंगर बांधे रख सकता है। गांधी अपने सभ्यतापाठ में इस लंगर के द्वारा भोगवादी जीवन-पद्धति और मूल्यों को ख़ारिज करते हुए एक ऐसे आध्यात्मिक जीवन और मूल्यबोध का प्रतिपादन करते हैं, जिसमें मनुष्य भीतर से समृद्ध होकर स्वयं सार्थक जीवन जीता है और दूसरे को भी जीने का अवसर देता है।

इस प्रकार यह साफ़ हो जाता है कि गांधी अतीत में लिखी गई अपनी क़िताब *हिंद स्वराज* के द्वारा आधुनिक सभ्यता के सम्मोहन में पड़कर मानसिक गुलामी में जकड़ गई संपूर्ण मानवता के लिए आज़ादी का ठोस प्रस्ताव प्रस्तुत करते हैं। गांधी इस प्रस्ताव के द्वारा पहले भी भारत को राजनीतिक आज़ादी दिला चुके हैं और आज भी उनका यह प्रस्ताव सारी दुनिया को मानसिक आज़ादी दिलाने में सक्षम है। इसीलिए यह क़िताब आज भी, पहले से और ज्यादा, प्रासंगिक है। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने गांधी की मृत्यु पर लिखा था, "मैं किसी काल में और वास्तव में आधुनिक इतिहास के ऐसे किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं जानता, जिसने भौतिक वस्तुओं पर आत्मा की शक्ति को इतने ज़ोरदार और विश्वासपूर्ण तरीक़े से सिद्ध किया हो।" *हिंद स्वराज* इस सिद्धि का दस्तावेज़ है, इसलिए इसे सभ्यता-पाठ का प्रामाणिक दस्तावेज़ माना जा सकता है। प्रामाणिक इस मायने में कि इसमें विकास के नाम पर भोग में लिपटी मानवता के लिए, जो सिर्फ़ स्वार्थ सिद्धि में रत है, परार्थसिद्धि की संकल्पना संयोजित की गई है। इस संकल्पना से ही उस समावेशी सभ्यता की आधारभूमि तैयार होती है, जिस पर 'जिओ और जीने दो' के जीवन-दर्शन का भव्य महल खड़ा होता है। इस महल का द्वार किसी के लिए बंद नहीं होता। इसकी विराटता में सब समाहित हो सकते हैं। इसमें सबका समावेश संभव है। अतः इसके पढ़े जाने के संबंध में कुमारी रैथबोन की यह विनती कि "उसे पढ़कर, उसमें रही भारी प्रामाणिकता को देखकर अपनी प्रामाणिकता की जांच करना मेरे लिए ज़रूरी हो गया है। लोगों से मेरी विनती है कि वे इस पुस्तक को ज़रूर पढ़ें," आज अनिवार्य रूप से स्वीकारने जैसी है। इस स्वीकृति में भविष्य की सुरक्षा निहित है। ❑

(लेखक बीआरए बिहार विश्वविद्यालय के दर्शनशास्त्र विभाग में व्याख्याता हैं)

ख़बरों में

● भारतीय वैज्ञानिकों ने पहले मानव गुणसूत्र को शृंखलाबद्ध किया

देश में पहले मानव गुणसूत्र को शृंखलाबद्ध करने का कार्य हो गया है यह उपलब्धि वैज्ञानिक व औद्योगिक अनुसंधान परिषद के वैज्ञानिकों ने हासिल की है। यह गुणसूत्र झारखंड राज्य के आस्ट्रो–एशियाटिक मूल के किसी अज्ञात किंतु स्वस्थ व्यक्ति का है।

सीएसआईआर ने विश्लेषणात्मक क्षमताओं तथा नयी प्रौद्योगिकियों की मदद से यह उपलब्धि हासिल की है। इसके साथ ही अब भारत संपूर्ण मानव गुणसूत्रों को शृंखलाबद्ध करने और उन्हें एकत्र करने में सक्षम अमरीका, चीन, कोरिया, कनाडा और ब्रिटेन जैसे देशों के समकक्ष आ गया है। भारतीय वैज्ञानिकों की इस उपलब्धि के बाद भारतीय गुणसूत्र विविधता कार्यक्रम के संयोजन से भविष्य में सस्ती स्वास्थ्य सुरक्षा और चिकित्सा की राह निकलेगी।

1990 में शुरू की गई अंतरराष्ट्रीय मानव गुणसूत्र परियोजना के परिणामस्वरूप दुनिया में पहली बार प्रथम मानव गुणसूत्र को शृंखलाबद्ध किया गया था और यह परियोजना वर्ष 2003 में पूरी की गई थी। इस परियोजना में अमरीका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, जापान और चीन के वैज्ञानिक शामिल थे लेकिन संसाधनों की कमी के कारण भारत इसमें शामिल नहीं हो पाया था।

श्री चव्हाण ने बताया कि अप्रैल 2009 में सीएसआईआर के वैज्ञानिकों ने सर्वमान्य प्राणी जेब्राफिश के गुणसूत्र को शृंखलाबद्ध करने का काम पूरा किया। उन्होंने बताया कि वर्ष 2008 में सीएसआईआर के नेतृत्व वाली भारतीय टीम के गुणसूत्र विविधता परियोजना के तहत भारतीय जनसमुदायों की आनुवांशिक विविधता का चित्रण किया गया। इससे भारत अपनी आनुवांशिकी विविधता का चित्रण करने वाला पहला देश बन गया।

● एटमी ऊर्जा आयोग के नये अध्यक्ष

देश में पदार्थ और प्रौद्योगिकी के शीर्ष विशेषज्ञ और भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र के निदेशक डॉ. श्रीकुमार बनर्जी को परमाणु ऊर्जा आयोग का अध्यक्ष एवं परमाणु ऊर्जा विभाग (डीएई) का सचिव नियुक्त किया गया है। उन्होंने एक दिसंबर को पदभार ग्रहण किया। डॉ. बनर्जी ने अनिल काकोदकर से प्रभार लिया जो 30 नवंबर को सेवानिवृत्त हो गए। पद्मश्री विजेता 63 वर्षीय डॉ. बनर्जी अप्रैल 2004 में भाभा परमाणु अनुसंधान केंद्र (बार्क) के निदेशक बने थे और वह प्रतिष्ठित बार्क प्रशिक्षण स्कूल के 11वें बैच के अधिकारी हैं।

डॉ. श्रीकुमार बनर्जी पदार्थ विज्ञान की जानी–मानी हस्ती हैं। उन्होंने जिर्कोनियम और टाइटीनियम जैसी दुर्लभ धातुओं के बुनियादी गुणों और परमाणु भट्टियों में इनके उपयोग पर व्यापक शोध किया है। उन्होने बताया कि किस तरह न्यूक्लियर रिएक्टरों में इस्तेमाल कर खास पदार्थों को रेडियोधर्मी विकिरण को सहने लायक बनाया जा सकता है। डॉ. बनर्जी की खोजी गई कुछ मिश्रित धातुओं का इस्तेमाल हल्के लड़ाकू विमानों में बहुतायात से किया जाता है।

प्रतिष्ठित वैज्ञानिक के रूप में डॉ. बनर्जी को अब तक कई पुरस्कारों से नवाज़ा जा चुका है। वर्ष 1969 में उन्हें इंजीनियरिंग साइंस का शांतिस्वरूप भटनागर पुरस्कार दिया गया। इसके अलावा वह जीडी बिड़ला गोल्ड मेडल, इंडियन न्यूक्लियर सोसायटी अवार्ड, एक्टा मैटलर्जिका आउटस्टैंडिंग पेपर अवार्ड पर हम्बोल्ट रिसर्च अवार्ड भी हासिल कर चुके हैं। डॉ. बनर्जी इंडियन एकेडमी ऑफ साइंसेज, इंडियन नेशनल सांइसेज एकेडमी, इंडियन नेशनल एकेडमी ऑफ इंजीनियरिंग और नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज के भी फेलो हैं। ❑

सदस्यता कूपन

नयी सदस्यता / नवीकरण / पता बदलने के लिए (जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिह्न लगाएं।)

मैं ..... (पत्रिका का नाम एवं भाषा) का ❑ वार्षिक (100 रुपये) ❑ द्विवार्षिक (180 रुपये)

❑ त्रिवार्षिक (250 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूं। डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या ..... तारीख .....

नाम .....

वर्ग ❑ विद्यार्थी ❑ शिक्षक ❑ संस्था ❑ अन्य

पता :.....

.....

पिन .....

नवीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या यहां लिखें :.....

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर ***निदेशक, प्रकाशन विभाग*** के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ इस पते पर भेजें :

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड-IV, सातवां तल, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

प्रकाशन विभाग की नवीनतम पुस्तकें

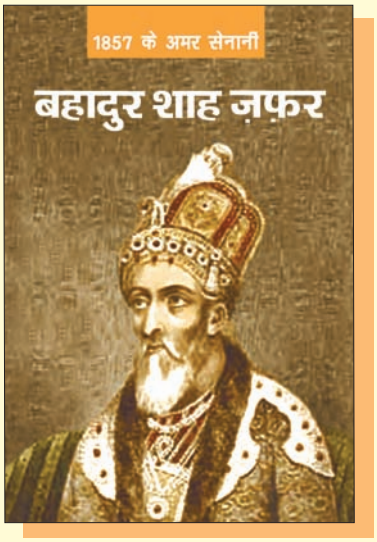

पुस्तक : बहादुरशाह ज़फ़र
लेखक : महेश दर्पण; **मूल्य :** 50 रुपये
आईएसबीएन : 978-81-230-1472-2

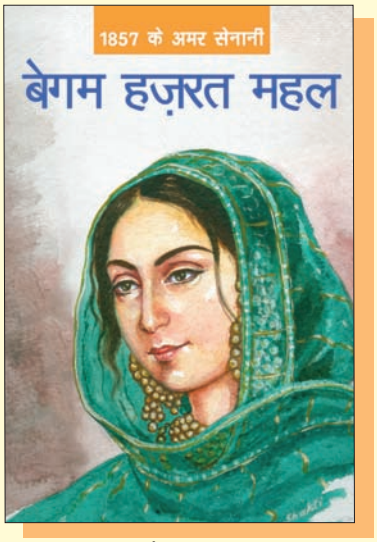

पुस्तक : बेगम हज़रत महल
लेखक : के.सी. यादव; **मूल्य :** 90 रुपये
आईएसबीएन : 978-81-230-1538-5

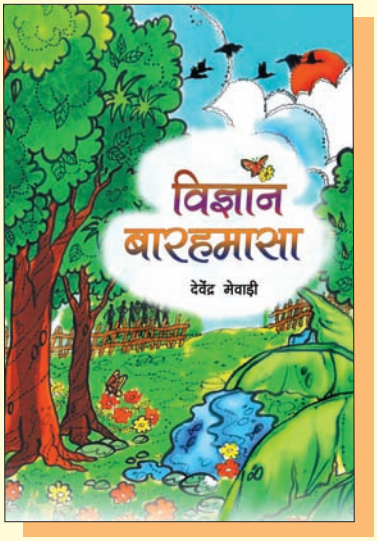

पुस्तक : विज्ञान बारहमासा
लेखक : देवेंद्र मेवाड़ी; **मूल्य :** 100 रुपये
आईएसबीएन : 978-81-230-1514-9

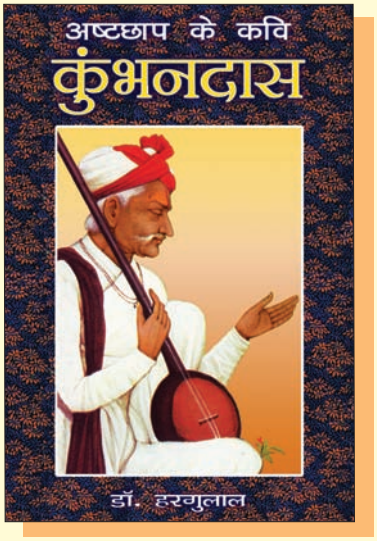

पुस्तक : अष्टछाप के कवि कुंभनदास
लेखक : डॉ. हरगुलाल; **मूल्य :** 90 रुपये
आईएसबीएन : 978-81-230-1439-5

पुस्तक के लिये कृपया हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर संपर्क करें :- सूचना भवन सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

प्रकाशक व मुद्रक वीना जैन, अपर महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिये ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉप्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। संपादक : राकेशरेणु

Licenced under U (DN)-53/09-11
पंजी सं. 951/57
R.N.951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2009-11 तथा डाक व्यय की पूर्व अदायगी के बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2009-11 Licenced to post without pre-payment at RMS, Delhi
26 दिसंबर, 2009 को प्रकाशित • 29-30 दिसंबर, 2009 को डाक द्वारा जारी

बाजार में उपलब्ध

प्रतियोगिता परीक्षाओं में सफलता

एक सम्पूर्ण वार्षिक संदर्भ ग्रंथ के साथ

कोड : 862

मूल्य 225/-

समसामयिक ताजा घटनाओं का विश्लेषण, खेल समाचार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, उद्योग व्यापार, विशिष्ट व्यक्तियों, पुरस्कारों एवं अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर उपयोगी सामग्री

निःशुल्क पुस्तिका
सामान्य अध्ययन के हल प्रश्न-पत्रों का संकलन

(नवीन आँकड़ों एवं तथ्यों सहित)

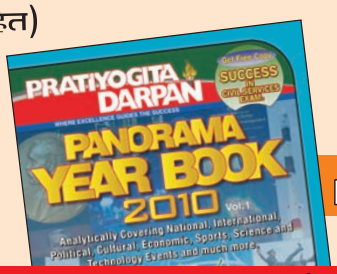

Get Free Copy
SUCCESS IN CIVIL SERVICES EXAM.

English Edition Code 800
Rs. 230.00

नोट : Vol. II अप्रैल 2010 में प्रकाशित किया जाएगा.

महत्वपूर्ण ताजा घटनाओं का विवेचन

प्रतियोगिता दर्पण
Fax : (0562) 4053330
2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा–282 002 फोन : 4053333, 2530966, 2531101
E-mail : publisher@pdgroup.in
To purchase online log on to www.pdgroup.in